श्री गणेशाय नमः

श्री जानकीवल्लभो विजयतेतराम्

देवराहा प्रसाद

हे वीतराग! शत्-शत् प्रणाम,
हे योगिराज! शत्-शत् प्रणाम।
हे ब्रह्मनिष्ठ! शत्-शत् प्रणाम,
हे देवराह! शत्-शत् प्रणाम॥

श्रीमद् चरणकिङ्कर
—'राम दास'

● प्रकाशक/स्वामी/मुद्रक ●

राम दास

● संस्करण ●

अक्टूबर प्रथम-2019

● सहयोग राशि ●

50/- (पचास रुपये मात्र)

● संरक्षक ●

कुँवर श्री रघुराज प्रताप सिंह

● सम्पादक ●

राम दास

● संशोधक ●

डॉ. अरुण कुमार त्रिपाठी

● परामर्शदात्री समिति ●

आचार्य सियाराम शास्त्री, श्री फूलचन्द्र दुबे, श्री मनोज मित्तल, श्री विजय कुमार, डॉ. हरेन्द्र मिश्र

● मुद्रण ●

दि इलाहाबाद ब्लॉक वर्क्स प्रा. लि.
329/255 चक, जीरो रोड, प्रयागराज
दूरभाष– 0532-2564543

सर्वाधिकार सुरक्षित – राम दास

सम्पादक - संचालक पूर्णतः असैवधानिक एवं अव्यवसायिक

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक राम दास की ओर से ''दि इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स प्रा0 लि0 329/255 चक जीरो रोड, प्रयागराज-211003'' उत्तर प्रदेश द्वारा मुद्रित एवं श्री देवरहा बाबा मंच न्यास कोहना, झूंसी - 211019 उत्तर प्रदेश, प्रयागराज से प्रकाशित

सम्पर्क सूत्र

श्री देवराहा बाबा मंच

शास्त्री पुल के नीचे, झूँसी, गंगा तट, प्रयागराज
पिन कोड — 211019
E-mail : sridevrahababamanch@gmail.com

सुधीजन हमें अपने लेख उक्त ई-मेल के पते पर भेज सकते हैं।
website : devrahababamanch.org

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय 4

ब्रह्मर्षि-योगिराज-देवराहा-स्तुति-शतकम् 5

भविष्य 6

योग क्या है? 7

योग 13

अथर्ववेद में प्रतिबिम्बित मानवाधिकार और उसकी प्रासंगिकता 18

मानस में निहित लोकोक्तियाँ व कहावतें 22

भगवत् अनुग्रह 26

श्री शठकोप मुनि 30

तत्किं कर्मणि घोरे मां 31

संपादकीय

आप सभी सुधी पाठकों और पूज्य बाबा के चरणानुरागी जनों की शुभेच्छा की कामना करता हूँ। देवराहा प्रसाद के प्रथम संस्करण का सम्पादकीय लिखते समय अत्यन्त प्रसन्न तथा भाव विह्वल हूँ, पूज्य बाबा द्वारा प्रकाशित ''पावन प्रसाद'' को ही आप सुधीजनों के प्रेम और पूज्य बाबा के दिव्य आशीर्वाद से ''देवराहा प्रसाद'' नाम से प्रथम अंक प्रकाशित किया जा रहा है। यह नाम रखने के पीछे मेरा विचार था कि जब बाबा स्वयं प्रकाशित करते थे तो इसका नाम ''पावन प्रसाद'' रखे थे। परन्तु अब हम लोग जो उनके बताये रास्ते पर चलने वाले लोग हैं उन्हें उनके प्रसाद की आवश्यकता है। इसलिए इसमें उनका नाम जोड़ दिया गया है, इस प्रकार से इसकी महत्ता अधिक बढ़ गई है। ''देवराहा प्रसाद'' के इस प्रथम अंक में जिन लेखकों ने अपनी लेखनी द्वारा अपना लेख बाबा को समर्पित किया है, वे सभी धन्यवाद और शुभाशीष के पात्र हैं।

सम्प्रति चातुर्मास चल रहा है। चातुर्मास अर्थात् चार माह विशेष साधना, अर्चन और निद्धियासन का ऋतु है। प्रायः इस ऋतु में यात्रा स्थगन और साधना का प्रारंभ भारतीय मनीषी परंपरा में होती आयी है। आध्यात्मिक ऊर्जा या किसी भी ऊर्जा का एक काल होता है, जिसके उपरांत ऊर्जा स्वतः समाप्त हो जाती है। प्राचीन मनीषियों ने ऊर्जा के भंडारण हेतु एक समय-सीमा तय किया और उस काल में ध्यानादि द्वारा ऊर्जा का संरक्षण करने के सुझाव दिये। किसी भी क्षेत्र में ऊर्जा का महत्त्व क्या है? ऊर्जा विहीन कोई भी कार्य नहीं हो सकता पदार्थवाद में या अध्यात्मवाद में। आप किसी को प्रभावित या अपने कार्यक्षेत्र में अग्रगव्यता प्राप्त करने के आधार में भी ऊर्जा ही है। ऊर्जा आधारित ही समस्त गतिविधियाँ है। इसलिये समस्त धर्मों ने ऊर्जा के संरक्षण पर जोर दिये हैं। ये जो ऊर्जा के संरक्षण (Conservation of energy) की विधि है उसे अध्यात्म में ध्यान,अर्चन, वन्दनादि द्वारा किया जाता है। इन्हीं कारणों से हमारे भारतीय मनीषियों ने ऊर्जा के संरक्षण के अनेकानेक विधियों को प्रतिपादित किया और उन्हीं ऊर्जाओं के बल के आधार पर ''सर्वे सन्तु निरामयाः' का उद्घोष किया।

देवराहा प्रसाद का प्रथम अंक आप सबको अध्यात्मिक ऊर्जा से ओतप्रोत करे और आप अपने स्वस्थ ऊर्जावान विचारों से लोक कल्याण करते रहे, एक बार पुनः शुभेच्छा और शुभाशीष।

मंगल स्वस्ति कामनायें।

(संपादक की कलम से)

ब्रह्मर्षि योगिराज देवरहा स्तुति शतकम्

नमोऽस्मदाचार्य परम्पराभ्यो,
नमो नमो भागवत ब्रजेभ्यः।
नमो नमोऽनन्तपुरस्सरेभ्यो,
नमः श्रियै श्रीपतये नमोऽस्तु॥

हमारी आचार्य परम्परा तथा समस्त भगवद् भक्तों को हमारा नमस्कार हो। भगवान् शेषनाग से लेकर भगवती श्री जी को तथा श्रीपति नारायण को भी हमारा बारम्बार नमस्कार हो।

नमोऽस्तु देववन्दितांघ्रिपङ्कजाययोगिने।
पुनर्वियोगिने प्रपञ्चपङ्कदोषदर्शिने।
सदा नमांसि सन्तु तत्परागरेणुराशये।
सुवासिताय शोभनाय रोचनाय चेतसे॥1॥

देवताओं के द्वारा भी जिनके चरणारविन्द वन्दनीय हैं, जो संसार के दोषों को जानते हुए उससे पृथक् रहते हैं, उन्हें हमारा नमस्कार हो। पुनः उनके चरणों की रज को जो कि सुगन्धित, सुन्दर तथा रुचिकर है, हमारा बारम्बार नमस्कार हो।।1।।

अनेकजन्मपुण्यपुञ्जसञ्चयेन साम्प्रतम्।
अहो सुलब्धमुत्तमं यदद्य सत्फलं ध्रुवम्।
गुरोर्मया कृतं हि दर्शनं महत्सुदुर्लभम्।
समस्तपापतापनाशकं सुशान्तिदायकम्॥2॥

आज अनेक जन्मों के पुण्य पुञ्जों के सञ्चित हो जाने के कारण ही मुझे गुरुवर के पवित्र तथा अत्यन्त दुर्लभ दर्शन प्राप्त हुए हैं, जिनसे मेरे सारे पापों और तापों का नाश हो गया है तथा परम शान्ति की प्राप्ति हुई है।।2।।

सुमञ्चपीठराजितास्ति कापि मूर्तिरुत्तमा।
दयाक्षमादिपूरितातियत्मला सुपेशला।
न चोपमास्ति क्वापि कापि शक्यते च कल्पितुम्।
सदाप्यसीमवर्षिणी सदैव दक्षिणाकृतिः॥3॥

मैं देख रहा हूँ कि सुन्दर मञ्च पर एक सर्वोत्तम दैवमूर्ति विराजमान है जो दया-क्षमा से परिपूर्ण अत्यन्त वत्सल तथा कोमल स्वभाव से परिपूर्ण है तथा कोई भी कहीं भी इसकी उपमा नहीं मिल रही है और न कल्पना तक भी की जा सकती है। यह असीम दया की दृष्टि करने वाली सदा ही अनुकूलता प्रदान करने वाली देवप्रतिमा हैं।।3।।

यदैव तन्मुखोत्थिता सुधाधरी विधायिनी।
श्रुता भवेद्धि वत्स वत्स पावनी गिरा क्वचित्।
तदैव देहगेहसंस्मृतिं विहाय यां गतिम्
प्रयाति सास्ति दुर्लभा न वर्णने क्षमा तथा॥4॥

दर्शनोपरान्त जबकि उनके मुखारविन्द से अमृत से भी मीठी बच्चा-बच्चा की पवित्र ध्वनि होती है तो उसी समय मनुष्य अपने तन-मन की सुधि भूलकर जिस अद्भुत आनन्द का अनुभव करता है, वह अत्यन्त ही दुर्लभ है तथा किसी भी प्रकार उसका वर्णन हो ही नहीं सकता।।4।।

कदापि धन्यता प्रयाति देववन्दिता धुनी,
यदा हि योगिवर्यदर्शनोत्थसौख्यमण्डिता।
भगीरथोऽपि तान्तदा विभाष्य भावभूषितः,
स्वकं महत्कृतं तपः फलान्वितं विभाव्यते॥5॥

जब कभी यह योगिराज गंगा तट पर विराजमान होते हैं तो भगवती गंगा जी भी अपने-आपको धन्य मानती हैं और योगिराज बाबा के दर्शनों से परम सुख का अनुभव करती हैं। ऐसी अवस्था में महाराज भगीरथ गंगा जी को सुखी देखकर परम प्रसन्न हो उठते हैं और अपनी महती तपस्या को सफल मानने लगते हैं।।5।।

क्रमशः अगले अङ्क में...

भविष्य

राघवेन्द्र दास

महाभारत महाकाव्य अद्वितीय है, इससे कोई भी साहित्यप्रेमी या साहित्यसमीक्षक असहमत नहीं हो सकता। 'यद् महाभारते नास्ति तत्र कुत्रापि नास्ति' जो महाभारत में नहीं है वह कहीं भी नहीं है, उपरोक्त वाक्य का विश्लेषण करें तो आप पायेंगे कि, महाभारत महाकाव्य में नीति, ज्ञान, मर्यादा और मानव जीवन को उत्कृष्ट बनाने में जिन मूल्यों का योगदान होता है वे सभी महाभारत में उपलब्ध हैं। महाभारत को हम यह भी कह सकते हैं गीता जैसी महान, दिव्य और लोककल्याणकारी उपदेश जिसका हिस्सा हो वह अद्वितीय तो होगा ही।

महाभारत से हमें यह ज्ञात होता है कि, प्रतिज्ञायें भी कभी-कभी प्रलयंकारी होती हैं। प्रतिज्ञाओं के बेड़ियों में भीष्म, द्रोण, कृप, द्रुपद, धृष्टघुम्न, शिखण्डी आदि के कारण यह महायुद्ध हुआ या नवयुग के आगमन हेतु ये सभी योद्धा अस्तित्व की सहायता कर रहे थे।

मेरी दृष्टि में कोई भी सभ्यता या समाज अतिविकसित भौतिक रूप से हो तथा स्वभाविक या आम्यन्तिरक रूपेण कुण्ठित या बौना हो गया हो तो उस समाज का विनाश या दूसरे शब्दों में कहें तो महायुद्ध के प्रमुख कारणों को उत्पन्न करती है।

शांति और युद्ध मानव जीवन के अभिन्न अंग है। दर्शनशास्त्री या बुद्धिजीवियों का विचार है कि युद्ध से शांति सम्भव नहीं। किंतु, शांति और युद्ध समाज में सतत् चलने वाली प्रक्रिया है। जब शांति हेतु संधि के समस्त मार्ग अवरुद्ध हो जायें तो समझना चाहिए नवयुग का आगमन होने वाला है। कृष्ण के जीवनदर्शन से ज्ञातव्य है कि, मथुरा त्याज्य द्वारका को अपना प्रमुख केन्द्र और राजधानी बनाने के निर्णय से मथुरा के राज्यसभा में कृष्ण के प्रस्ताव से अनेक क्षत्रप (मथुरा राजवंश के मित्र) असहमत थे। किंतु, श्रीकृष्ण ने राज्यसभा को संबोधित कर कहा था—युद्ध एक आपदा है और आपदा से बचने का पूरी समग्रता से प्रयास करना चाहिए। युद्ध आपदा है मानववृत आपदा और कोई भी श्रेष्ठ सभ्यता या समाज युद्ध को टालेगा ही किंतु, शांति के अन्य मार्ग प्रशस्त न होने पर युद्ध ही अंतिम मार्ग है।

महाभारत में कृष्ण ने कुरूक्षेत्र के युद्ध को टालने के अनेकानेक मार्गों को अपनाया शांतिदूत भी कृष्ण बने और हस्तिनापुर जाकर पाण्डवों के तरफ से केवल पाँच ग्रामों को मांगा किन्तु, धृतराष्ट्र के अंधकार में उजाले के स्वप्न गंधार नरेश द्वारा देखा जाना और पुत्रमोह ने वो भी न दे सकने के परिणामतः युद्ध होता है। संसार का ऐसा कोई भी मसला नहीं जिसे बात चीत करके न ठीक किया जा सके परंतु किसी कारणवश यह नहीं हो पाता और भौतिक रूप से विकसित सभ्यता हो तो परिणाम दुःखदायी होते हैं।

उपरोक्त प्रसंग की परिचर्चा का कारण यह था कि, आज विश्व कहाँ जा रहा है। क्या हम आभ्यान्तरिक रूप से विकसित हुए हैं। भौतिक रूप से विकास का अर्थ शून्य हो जाता है जब मानव ही न रहे। अब तक के 3000 वर्ष के इतिहास में लगभग 10,000 से अधिक युद्ध हुए थे। हम कहाँ जा रहे हैं? क्या महाभारत काल में? क्या हमने अपने अतीत से कुछ नहीं सीखा? बुर्जुआ क्रांति जिन लोगों के खिलाफ हुई और जो लोग सत्ता में बैठे उन्होंने क्या किया? यह सर्वविदित है कि आज भी अपनी परिदशा में हैं। सत्तासीन लोग जिन रास्तों से सिंहासन तक पहुँचते हैं, उन्हें भूलकर उन्हीं कार्यों में लग जाते हैं जिन कारणों से क्षुब्ध होकर जनमानस में क्रांति हुई और वे सत्ता तक पहुँचे।

आज विश्व में अनेक राष्ट्रों ने विभिन्न प्रलयंकारी अस्त्र-शस्त्र और विस्फोटक का निर्माण हुआ है उसका परिणाम अत्यंत दुःखदायी तो है ही,क्योंकि इन विस्फोटकों से मानव ही नहीं पृथ्वी की समस्त चेतना शक्ति ही विनष्ट हो जायेगी। औपनिवेशिक नीतियों से मानवता का दोहन हो रहा है। भविष्य में धृतिधारक मनुष्यों का अभाव होगा और सम्पूर्ण विश्व युद्ध के आगोश में होगा। क्योंकि सभ्यताओं का विकास वाह्य नहीं आभ्यान्तरिक भी होना चाहिए। विश्व के सबल और सजक राष्ट्रों द्वारा सांस्कृतिक और राजनैतिक उपनिवेशवाद से यह आपदा जन्म ले रही है, इसलिए आज की पीढ़ी को अपने अतीत से सीखने की आवश्यकता है और इस विभीषका से बचने की आवश्यकता है।

योग क्या है?

विजय कुमार IRTS

संस्कृत धातु 'युज' से निकला है, जिसका मतलब है व्यक्तिगत चेतना या आत्मा का सार्वभौमिक चेतना या रूह से मिलन। योग, भारतीय ज्ञान की पांच हजार वर्ष पुरानी शैली है। हालांकि कई लोग योग को केवल शारीरिक व्यायाम ही मानते हैं, जहाँ लोग शरीर को मोड़ते, मरोड़ते, खींचते हैं और श्वास लेने के जटिल तरीके अपनाते हैं। यह वास्तव में केवल मनुष्य के मन और आत्मा की अनंत क्षमता का खुलासा करने वाले इस गहन विज्ञान के सबसे सतही पहलू हैं, योग का अर्थ इन सब से कहीं विशाल है। योग विज्ञान में जीवन शैली का पूर्ण सार आत्मसात किया गया है।

गुरुदेव श्री श्री रवि शंकर कहते हैं, ''योग सिर्फ व्यायाम और आसन नहीं है। यह भावनात्मक एकीकरण और रहस्यवादी तत्व का स्पर्श लिए हुए एक आध्यात्मिक ऊँचाई है, जो आपको सभी कल्पनाओं से परे की कुछ एक झलक देता है।''

योग का इतिहास
(History of Yoga)

योग दस हजार साल से भी अधिक समय से प्रचलन में है। मननशील परंपरा का सबसे तरोताजा उल्लेख, नासदीय सूक्त में, सबसे पुराने जीवन्त साहित्य ऋग्वेद में पाया जाता है। यह हमें फिर से सिन्धु-सरस्वती सभ्यता के दर्शन कराता है। ठीक उसी सभ्यता से, पशुपति मुहर (सिक्का) जिस पर योग मुद्रा में विराजमान एक आकृति है, जो वह उस प्राचीन काल में योग की व्यापकता को दर्शाती है। हालांकि, प्राचीनतम उपनिषद, बृहदअरण्यक में भी, योग का हिस्सा बन चुके, विभिन्न शारीरिक अभ्यासों का उल्लेख मिलता है। छांदोग्य उपनिषद में प्रत्याहार का तो बृह्दअरणयक के एक स्तवन (वेद मंत्र) में प्राणायाम के अभ्यास का उल्लेख मिलता है। यथावत, ''योग'' के वर्तमान स्वरूप के बारे में, पहली बार उल्लेख शायद कठोपनिषद में आता है, यह यजुर्वेद की कथाशाखा के अंतिम आठ वर्गों में पहली बार शामिल होता है जोकि एक मुख्य और महत्वपूर्ण उपनिषद है। योग को यहाँ भीतर (अन्तर्मन) की यात्रा या चेतना को विकसित करने की एक प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है।

प्रसिद्ध संवाद, ''योग याज्ञवल्क्य'' में, जोकि (बृहदअरण्यक उपनिषद में वर्णित है), जिसमें बाबा याज्ञवल्क्य और शिष्य ब्रह्मवादी गार्गी के बीच कई साँस लेने सम्बन्धी व्यायाम, शरीर की सफाई के लिए आसन और ध्यान का उल्लेख है। गार्गी द्वारा छांदोग्य उपनिषद में भी योगासन के बारे में बात की गई है। Tweet: प्रसिद्ध संवाद, ''योग याज्ञवल्क्य'' में, जोकि, जिसमें बाबा याज्ञवल्क्य और शिष्य ब्रह्मवादी गार्गी के बीच कई साँस लेने सम्बन्धी व्यायाम, शरीर की सफाई के लिए अथर्ववेद में उल्लेखित संन्यासियों के एक समूह, वार्ता (सभा) द्वारा, शारीरिक आसन जोकि

योगासन के रूप में विकसित हो सकता है पर बल दिया गया है। यहाँ तक कि संहिताओं में उल्लेखित है कि प्राचीन काल में मुनियों, महात्माओं, विभिन्न साधु और संतों द्वारा कठोर शारीरिक आचरण, ध्यान व तपस्या का अभ्यास किया जाता था। योगी धीरे-धीरे एक अवधारणा के रूप में उभरा है और भगवद गीता के साथ साथ, महाभारत के शांतिपर्व में भी योग का एक विस्तृत उल्लेख मिलता है।

बीस से भी अधिक उपनिषद और योग वशिष्ठ उपलब्ध हैं, जिनमें महाभारत और भगवद गीता से भी पहले से ही, योग के बारे में, सर्वोच्च चेतना के साथ मन का मिलन होना कहा गया है।

हिंदू दर्शन के प्राचीन मूलभूत सूत्र के रूप में योग की चर्चा की गई है और शायद सबसे अलंकृत पंतजलि योगसूत्र में इसका उल्लेख किया गया है। अपने दूसरे सूत्र में पतंजलि, योग को कुछ इस रूप में परिभाषित करते हैंः

''योगः चित्त-वृत्ति निरोधः''-योग सूत्र 1.2

पतंजलि का लेखन भी अष्टांग योग के लिए आधार बन गया। जैन धर्म की पांच प्रतिज्ञा और बौद्ध धर्म के योगाचार की जड़ें पतंजलि योगसूत्र में निहित हैं।

मध्यकालीन युग में हठ योग का विकास हुआ।

योग का ग्रंथः पतंजलि योग सूत्र

(Scriptures of Yoga:Patanjali Yoga Sutras)

पतंजलि को योग के पिता के रूप में माना जाता है और उनके योग सूत्र पूरी तरह योग के ज्ञान के लिए समर्पित रहे हैं। प्राचीन शास्त्र पतंजलि योग सूत्र, पर गुरुदेव के अनन्य प्रवचन, आपको योग के ज्ञान से प्रकाशमान (लाभान्वित) करते हैं, तथा योग की उत्पत्ति और उद्देश्य के बारे में बताते हैं। योग सूत्र की इस व्याख्या का लक्ष्य योग के सिद्धांत बनाना और योग सूत्र के अभ्यास को और अधिक समझने योग्य व आसान बनाना है। इनमें ध्यान केंद्रित करने के प्रयास की पेशकश की गई है कि क्या एक 'योग जीवन शैली' का उपयोग योग के अंतिम लाभों का अनुभव करने के लिए किया जा सकता है।

गुरुदेव ने भी योगसूत्र उपनिषद पर बहुत चर्चा की है। गीता पर अपनी टिप्पणी में उन्होंने, सांख्ययोग, कर्मयोग, भक्तियोग, राजगुहिययोग और विभूतियोग की तरह, योग के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डाला है।

योग के प्रकार

(Types of Yog)

''योग'' में विभिन्न किस्म के लागू होने वाले अभ्यासों और तरीकों को शामिल किया गया है।

'ज्ञान योग' या दर्शनशास्त्र; 'भक्ति योग या भक्ति-आनंद का पथ; 'कर्म योग' या सुखमय कर्म पथ

राजयोग, जिसे आगे आठ भागों में बांटा गया है, को अष्टांग योग भी कहते हैं। श्री श्री योग जीवन का एक समग्र तरीका है जो योग के प्राचीन ज्ञान के सभी तत्वों को एकीकृत करता है, ताकि प्रार्थनापूर्वक अनुशासनमय रहते हुए, शरीर, मन और आत्मा को एक कर सकें। सरल शृंखला के साथ-साथ, हालांकि प्रभावी योगासन और श्वास तकनीक में, ध्यान के आंतरिक अनुभव पर अधिक जोर दिया जाता है, क्योंकि मन के स्वास्थ्य और मानव अस्तित्व से जुड़े अन्य छिपे हुए तत्वों के लिए यह जरूरी है। हम मानते हैं कि जब किसी के भीतर सद्भाव होता है; तो जीवन के माध्यम से यात्रा शांत, सुखद और अधिक परिपूर्ण हो जाती है।

योग की सुंदरताओं में से, एक खूबी यह भी है कि बुढ़े या युवा, स्वस्थ (फिट) या कमजोर सभी के लिए योग का शारीरिक अभ्यास लाभप्रद है और यह सभी को उन्नति की ओर ले जाता है। उम्र के साथ साथ आपकी आसन

की समझ और अधिक परिष्कृत होती जाती है। हम बाहरी सीध और योगासन के तकनीकी (बनावट) पर काम करने के बाद अन्दरूनी सूक्ष्मता पर अधिक कार्य करने लगते हैं और अंततः हम सिर्फ आसन में ही जा रहे होते हैं। योग हमारे लिए कभी भी अनजाना नहीं रहा है। हम यह तब से कर रहे हैं जब हम एक बच्चे थे। चाहे यह ''बिल्ली खिंचाव'' आसन हो जो रीढ़ को मजबूत करता है या पवन-मुक्त आसन जो पाचन को बढ़ाता है, हम हमेशा शिशुओं को पूरे दिन योग के कुछ न कुछ रूप करते पाएंगे। बहुत से लोगों के लिए योग के बहुत से मायने हो सकते हैं। वस्तुतः ''योग के जरिये आपके जीवन की दिशा'' तय करने में मदद करने के लिए दृढ़ संकल्प हैं!

सांस लेने की तकनीक प्राणायाम और ध्यान (Dhyaan)

सांस का नियंत्रण और विस्तार करना ही प्राणायाम है। साँस लेने की उचित तकनीकों का अभ्यास रक्त और मस्तिष्क को अधिक ऑक्सीजन देने के लिए, अंततः प्राण या महत्त्वपूर्ण जीवन ऊर्जा को नियंत्रित करने में मदद करता है। प्राणायाम भी विभिन्न योग आसन के साथ साथ चलता जाता है। योग आसन और प्राणायाम का संयोग शरीर और मन के लिए, शुद्धि और आत्म अनुशासन का उच्चतम रूप माना गया है। प्राणायाम तकनीक हमें ध्यान का एक गहरा अनुभव प्राप्त करने हेतु भी तैयार करती है।

योग से पाचन शक्ति का प्राकृतिक उद्दीपन (How to improve digestive system naturally)

दुरुस्त पाचन तंत्र,उत्तम स्वास्थ्य प्राप्ति का एक महत्त्वपूर्ण स्तम्भ है। अगर व्यक्ति का पाचन तंत्र सुचारु रूप से काम करे तो वह पेट दर्द, कब्ज, पेट के घाव, कील मुहांसे व वायु-विकार आदि अनेक व्याधियों से बच सकताहै।

पाचन तंत्र दुरुस्त करने के कारण व उपचार

अधिक मात्रा में तथा असमय भोजन करने, प्रकृति विरुद्ध पदार्थों के सेवन व तनाव आदि के फलस्वरूप पाचन तंत्र बिगड़ जाता है। इसे दुरस्त करने के लिए हम एक दो समय का उपवास करते हैं या कुछ एंटासिड (अम्ल-रोधी) गोलियां खा लेते हैं। इन सबसे लाभ तो होता है पर यह अस्थायी होता है।

पाचन शक्ति बढ़ाने के योग (Yoga asana to improve digestive system)

हालाँकि, अपने दैनिक जीवन-चर्या में समूल परिवर्तन करना बड़ा कठिन है फिर भी अपने पाचन तंत्र को सशक्त बनाने व पुनर्जीवन प्रदान करने के लिए कुछ प्रभावी कदम उठाने की आवश्यकता है। शरीर को अपनी पूर्व स्वस्थ अवस्था में लौटाने में योग से अधिक कारगर कोई और उपाय हो नहीं सकता। यह किसी भी प्रकार के दुष्प्रभाव से रहित एक प्रामाणिक तकनीक है जो जीवन चर्या में बिना कोई विशेष परिवर्तन के, शरीर को प्राकृतिक व सम्पूर्ण रूप से स्वस्थ करने में सक्षम है।

निम्न योगासनों का अभ्यास उदर सम्बन्धी अंगों को शिथिलता प्रदान कर, उनको तनाव मुक्त कर, पाचनतंत्र को स्वस्थ सुचारु व सक्रिय बनाता हैः

1. उस्ट्रासन — Camel pose
2. पद्मासन — Lotus pose
3. धनुरासन — Dhanurasana
4. नौकासन — Naukasana
5. सेतुबंधासन — SetuBandhasan
6. पवन मुक्तासन — Pavanamuktasana

आयुर्वेद (Ayurveda)–उत्तम स्वास्थ्य की कुंजी

योग के अभ्यास के साथ साथ अपनी जीवन चर्या में आयुर्वेद को अपनाना भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। आयुर्वेद हमारे शरीर की प्रकृति को संतुलित रखने के लिए उचित जीवन-चर्या निर्धारित करने में सहायक है। आयुर्वेद हमें रोगों के निवारण के उपाय बताने के साथ-साथ उनके उत्पन्न होने के मूल कारणों को इंगित करता है। योग एक प्रभावी तकनीक है जो न केवल पाचन तंत्र के लिए उपयोगी है अपितु वह सम्पूर्ण शरीर को सुगठित गठन करता है। अगर आप किसी प्रकार का शारीरिक व्यायाम करते हैं तो उसमें आप योग आसनों का समावेश कर सकते हैं। किसी भी व्यायाम की तरह योग का असर नजर आने में भी समय लगता है। नियमित अभ्यास आपके पाचन तंत्र को सुदृढ़ कर आपके शारीरिक सौष्ठव को बढ़ाता है तथा शरीर को लचीला पन प्रदान करता है। अतः नित्य आधा घंटे का समय अपनी योग चटाई पर बिताइये, उपरोक्त योगासनों में स्वयं को स्थिर कर पेट अपने पाचनतंत्र को उसके उच्चतम स्तर पर पुनर्स्थापित कीजिये।

मस्तिष्क की क्षमता बढ़ाने के लिए 5 सुपर ब्रेन योग व्यायाम

5 Super Brain Yoga Exer cises in Hindi to Boost Your Gr ey Matter Super Brain Yoga Postur es

प्रतिदिन सुबह जब आप जागते हैं, तब आपके स्वास्थ्य की स्थिति ही दिनचर्या निश्चित करती है। शरीर की कोई भी बीमारी हमारे उत्साह को कमजोर कर देती है और रोज के काम को ठीक से करने में दिक्कत लाती है। बहुत से योग आसन हैं जो आपको स्वस्थ रखने में मददगार है खासकर शारीरिक रूप से पायें तो बस एक पड़ाव है सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लक्ष्य की ओर। आपका मानसिक स्वास्थ्य भी उतना ही जरूरी है।

आपका मस्तिष्क रोज के काम को करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आपकी प्रतिक्रिया की क्षमता, समझने की क्षमता, महसूस करने की क्षमता और फिर अच्छे से काम कर पाना, ये सब आपके मस्तिष्क की सेहत से जुड़े हुए हैं। कई बार हम ये समझ ही नहीं पाते हैं कि शरीर के और अंगों की तरह मस्तिष्क को भी प्रतिदिन पोषण और ऊर्जा की जरूरत होती है। जैसे शरीर को सही रखने के लिए शारीरिक व्यायाम आवश्यक है उसी तरह मस्तिष्क का व्यायाम बुद्धिमत्ता के लिए आवश्यक है। योग आसन हमारे शरीर के समग्र रूप से सही कार्य करने में बहुत प्रभावी हैं।

मस्तिष्क के लिए–योग आसन और प्राणायाम

योग का विज्ञान शरीर की आन्तरिक शक्ति को जगाता है और शरीर को अधिक शक्तिशाली बनाता है तथा कार्यक्षमता को बढ़ाता है। ये संज्ञान शक्ति में तत्काल वृद्धि का कारक भी हो सकता है। ये तनाव से मुक्त करता है और मस्तिष्क के द्वारा संचालित सभी महत्त्वपूर्ण क्रियाओं के संचालन में मदद करता है। जैसे बायीं नासिका से श्वास लेने पर दाहिना मस्तिष्क सक्रीय होता है और दायीं नासिका से श्वास लेने पर बायां मस्तिष्क सक्रीय होता है।

1. Bhramari Pranayama भ्रामरी प्राणायाम।
2. Paschimottanasana पाद पश्चिमोत्तानासन।
3- Setu Bandhasana सेतुबंध आसन।
4- Sarvangasana सर्वांगासन।
5- Halasana हलासन।

मस्तिष्क में रक्त प्रवाह को बेहतर कर तंत्रिका तंत्र को शांत करता है। पीठ और गर्दन में खिंचाव से तनाव और थकावट को कम करता है।

सुपर ब्रेन योग के लाभ (Benefits of super brain yoga)

सुपर ब्रेन योग से आपके कर्ण पल्लवों में उपस्थित एक्यूप्रेशर बिंदु सक्रीय होकर आपके मस्तिष्क की क्षमता बढ़ाते हैं। इस व्यायाम से मस्तिष्क को लाभ पहुँचता हैः

- दाएं और बाएं मस्तिष्क में समन्वय लाकर
- शरीर में ऊर्जा का उचित वितरण कर और शांत करके
- सोचने की क्षमता को बढ़ाकर
- मानसिक ऊर्जा को बढ़ाकर
- रचनात्मकता को बढ़ाकर
- संज्ञान शक्ति को बढ़ाकर
- एकाग्रता और स्मरण शक्ति बढ़ाकर
- निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि करके
- तनाव को कम करके
- मनोवैज्ञानिक रूप से स्थिर करके

ये मस्तिष्क के व्यायाम विभिन्न मानसिक रोगों जैसे अल्झाइमर, अवसाद, अटेंशन डेफिसिट हाइपर एक्टिविटी डिसऑडर (ADHD), डाउन सिंड्रोम, आटिज्म और डिस्लेक्सिया आदि में मरीजों को काफी सहायक रहे हैं। इन व्यायाम के बाद आप एक निर्देशित ध्यान भी कर सकते हैं।

उत्तम रक्त परिसंचरण के लिए योग आसन (Yoga asanas for good blood circulation:)

इन आसनों के अभ्यास से चेहरे और सिर के भाग में रक्त परिसंचरण बढ़ता है। ये आपको प्राकृतिक रूप से सुन्दर त्वचा देता है।

1. **भुजंगासन (Cobra Pose)**—पीठ और कंधे से कड़ापन कम करता है। आपको विश्राम देकर आपकी मनोदशा को अच्छा करता है। आपकी त्वचा को चिकना और लचीला करता है।
2. **मत्स्यासन (Fish Pose)**—सांस की गहराई बढ़ाता है, हार्मोन के असंतुलन ठीक करता है और मांसपेशियों को आराम देता है। त्वचा अधिक लचीली और दृढ़ बनाता है।
3. **हलासन (Plough Pose)**—चेहरे और सिर में रक्त प्रवाह को बढ़ाता है। परिणामस्वरूप त्वचा में निखार आ जाता है।
4. **सर्वांगासन (Shoulder Stand Pose)**—सर्वांगासन सिर में रक्त के प्रवाह को बढ़ाकर त्वचा की चमक में वृद्धि करता है। साथ ही ये दोनों और मुहांसों से मुक्ति दिलाने में मदद करता है।
5. **त्रिकोणासन (Triangle Pose)**—आपके चेहरे और सिर में रक्त प्रवाह में वृद्धि करता है। ऑक्सीजन की अधिक मात्रा में आपूर्ति त्वचा की चमक में वृद्धि के रूप में दिखती है।
6. **शिशुआसन (Child Pose)**—शिशुआसन से भी सिर के हिस्से में रक्त परिसंचरण बढ़ता है और तनाव और थकावट को दूर करता है।

सभी आसन जिसमें सिर नीचे होता है तंत्रिका तंत्र को उत्तेजित करते हैं सिर में अधिक ऑक्सीजन और रक्त प्रवाह होता है जिससे हमारा उपापचय और ऊर्जा का स्तर बढ़ता है।

पाचन को बेहतर करने के योग आसन

(Yoga asanas to improve digestion)

सुन्दर त्वचा आपके भीतर के अनुभव को प्रक्षेपित करती है। जब आपका पाचन तंत्र अच्छे से काम करता है, भोजन अच्छे से अवशोषित होता है, अपशिष्ट पदार्थ का उत्सर्जन ठीक से होता है। इस प्रक्रिया में उत्पन्न ऊर्जा सभी आंतरिक अंगों को अच्छी स्थिति में रखती है। आपकी त्वचा को भी सीधे लाभ मिलता है और ये अच्छे से पुष्ट दिखती है और दमकती है। पाचन को सुचारु करने के लिए कुछ आसन और प्राणायामः

1. **पवनमुक्तासन (Wind Relieving Pose)**—अपच को ठीक करने में मदद करता है।
2. **वज्रासन (Kneeling Pose)**—शरीर के विषहरण में मदद करता है फलतः पाचन सुचारु होता है।
3. **धनुरासन (Bow Pose)**—धनुरासन तनाव मुक्ति का रामबाण है, पूर्ण विश्राम देता है। ये विश्राम दोनों को राकता है।
4. **नाड़ी शोधन प्राणायाम (Alternate Nostril Breathing Technique)**—नाड़ी शोधन सहनशीलता बढ़ाता है और स्वस्थ और दमकती त्वचा के विकास सहायक है।
5. **कपाल भाती प्राणायाम (Skull Shining Breathing Technique)**—पेट साफ करने में मदद करता है और शरीर के विषहरण में बहुत उपयोगी है। ये त्वचा को तरोताजा और चमकता हुआ बनाता है।
6. **सूर्य नमस्कार (Sun Salutation)**—सूर्य नमस्कार के कुछ राउंड करने से शरीर से विषहरण होता है साथ ही त्वचा में प्राकृतिक निखार आ जाता है।

मनो बुध्यहंकार चित्तानिनाहं,
नच श्रोत्रजिह्वे न च घ्राण नेत्रे।
नच व्योमभूमिर्न तेजो न वायु
श्चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

योग

–डॉ. रामनरेश त्रिपाठी

प्रस्तुत आलेख ब्रह्मवेत्ता योगी सम्राट देवराहा बाबा के योग-दर्शन पर आधारित है। पूज्य बाबा पातंजलि योग परम्परा के पोषक थे। यही आलेख में दर्शित किया गया है।

योग एक जन्मजात प्रक्रिया है। इसका सम्बन्ध सृष्टि से है। प्रत्येक मानव प्राणी 'योग' का ही प्रतीक है। बच्चा जन्म लेने के समय ही शब्दरूप ध्वनि करता है। उस अक्षर संयुक्त 'शब्द' में ही योग निहित है। 'माँ' का उच्चारण अथवा रूदन से उच्चरित शब्द योगरूप है। पश्चात् सम्पूर्ण जीवन योगमय ही दृष्टिगत होता है। मानव ही नहीं प्रत्येक प्राणी की क्रिया-प्रक्रिया योग से जुड़ी हुई है। कालान्तर में इसे जीवन-दर्शन के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया।

हिरण्यगर्भ : हिरण्यगर्भ का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव हुआ।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे।
भूतस्य जातः पतिरेक मासीत।।
सदाचार पृथ्वीं द्यां उतेमां।
कस्मै देवाय हविषा वेधेम्।।

ऋक् 10/12

हिरण्यगर्भ ही योग के प्रवर्त्तक माने जाते हैं।

इदं हि योगेश्वर योग नैपुणं हिरण्यगर्भो भगवान जगादयत्।

पातंजलि ने तो अपने प्रथम सूत्र में ही कहकर संकेत दे दिया कि वे योग को अनुशासनबद्ध कर रहे हैं।

अथयोगानुशासन

एक ओर 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' ब्रह्म को जानने की जिज्ञासा दूसरी ओर योग। यही योग का विशिष्टायोग है। ब्रह्म को जानना है तो योग को जानना आवश्यक होगा।

योग-मनीषियों ने योग तथा उसकी क्रियाओं को अलग-अलग परिभाषित किया है।

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः

योग चित्रवृत्तियों को निरुद्ध करना है। मन, बुद्धि, चित्त अहंकार इन अन्तःकरण चतुष्टय का विभेद है परन्तु केन्द्र में मन है। इसीलिये कहा गया है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धनमोक्षयोः छान्दोग्य (8/6/6) कण्ठ तथा योग शिखोप विषय में इसका विस्तृत वर्णन है।

पराविद्या

सच्चे अर्थों में योग पराविद्या है। मुण्डकोनपनिषद में स्पष्ट कहा गया है—

तस्मै स हो वाच। द्वे वियोवेदितव्ये इति।
ह स्म यद ब्रह्म विदोवदन्ति परायै वा परा च।

योग का प्रयोजन स्वरूप स्थिति अर्थात् कैवल्य अपवर्ग, मोक्ष, निःश्रेयस आदि है।

'गुरु' तथा योग दोनों का अटूट सम्बन्ध है।

कबीर के शब्दों में—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागो पाय,
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय।
कबीर ते नर अन्ध है, गुरु को कहते और,
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहि ठौर।
शिष्य तो ऐसा चाहिए, जो सबकुछ गुरु को देय,
गुरु भी ऐसा चाहिए जो कौड़ी हूं न लेय।
दुर्लभो विषयस्त्याग, दुर्लभंतत्त्वदर्शनम्,
दुर्लभं सहजावस्था, सद्गुरोर करुणाविदां।
दर्शनात्, स्पर्शनात् शब्दात् शिष्य देहको
जनयेद् यः समावेशं सम्भवं हि सः देशिकः

(विश्वामित्र)

योग के स्वरूप

ज्योतिष, आयुर्वेद-विज्ञान आदि में अनेक योग हैं। परन्तु साधना के क्षेत्र में राजयोग एवं हठयोग दो की प्रधानता है। हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है—

'केवलं राजयोगाया हठविद्योपदिश्यते।'
राजयोगं बिना पृथ्वी राजयोगं बिना निशा।
राजयोगं बिना मुद्रा विचित्रादि ने शोभते।

हठयोग प्रदीपिका में 4/3/4 तथा 8/9 में राजयोग की विस्तृत चर्चा की गई है। वर्तमान में तो 'इतो भ्रष्टास्ततोभ्रष्टाः' योगी (तथाकथित) देखने को मिलते हैं।

योग-दर्शन में कुल चार पाद और 195 सूत्र है। समाधिपाद में 51 साधन पद में 55, विभूति पाद में 55 और कैवल्य पाद में 34। चारों पादों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण समाधिपाद हैं। इसी का दूसरा सूत्र है—

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः

इसी के अन्तिम सूत्र में कहा गया है—

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजं॥

योग-दर्शन के 17-18, 41-51 सूत्रों में समाधि की विस्तार के व्याख्या की गई है।

प्रथम सूत्र—अथ योगानुशासनम्

द्वितीय—योगश्चित्तववृत्ति निरोधः

तृतीय—द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।''

दृष्टा की (आत्मा की) अपने स्वरूप में स्थिति।

चौथा सूत्र—'वृत्तिमा रुप्यमितरत्र'

यदपि दृष्टा पुरुष स्वरूप स्वभाव से असंग एवं निर्लिप्त है, परन्तु चित्तरूपी जल की वृत्ति तरंगों से तरंगायित-सा भासता है। इसलिये वृत्तिरूप तरंगों के रहने पर दृष्टा का चित्त सारूप्य होता है और स्वयं की अनुभूति करता है।

पातंजल योग साधना :

गीताकार अपने शब्दों में चित्तवृत्ति के निरोध का सम्बन्ध मन से समन्वित करते हुए कहा है—

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि वलवद्दृढ़म्
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायुरिवसुदुष्करम्।

1. ईश्वर प्रणिधानाद्वा
2. तस्य वाचकः प्रणवः 27
3. तज्जपस्तदर्थ भावनम् 28
4. प्रत्यक्चेता ना धिगमोऽपयन्तरायामावश्य 29
5. तत्प्रति षेधार्थ में कतत्कभ्यासः 32

क्रियायोग

तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः 2-1

ध्यान हेयास्तदवृत्तयः 2.11

द्रष्ट दृश्ययो; संयोगो हेय हेतुः 2/17

इस प्रकार के अनेक सूत्रों के माध्यम से पातंजल के योग तथा क्रिया के महत्त्व को प्रतिपादित किया है।

वैसे योग के आठ अंग इस प्रकार बताये गये हैं—

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि 2/29

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः 2/35

अहिंसा में प्रतिष्ठा होने पर सारे प्राणी वैर का त्याग कर देते हैं।

1. अहिंसा 2. सत्य 3. अस्तेय 4. ब्रह्मचर्य के महत्त्व को पातंजल योग में प्रतिपादित किया गया है।

हठयोग

इसे काय योग, नाथ योग भी कहा गया है।

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दु धारणात्।

बिन्दु अर्थात् शुक्र के पश्चात् दूसरा तत्त्व प्राण है। '**यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे**' पिण्ड और ब्रह्माण में यह योग सामंजस्य स्थापित करता है।

सिद्ध-सिद्धान्त पद्धति में कहा गया है—

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते
सूर्यश्चन्द्र मसौ योगादृढ़योगो निगद्यते

योग में षट्कर्म : धौति-वास्ति आदि। सूर्य तथा पिंगला नाड़ी। 6 चक्र 16 आधार, दो लक्ष्य धामे पंचक। आसनों की संख्या 84 लाख परन्तु योग साधना के लिये 84 आसनों का वर्णन है। 32 आसन प्रधान हैं। फेरण्ड संहिता में 25 मुद्रायें वर्णित हैं, परन्तु हठयोग प्रदीपिका में 10 मुद्राओं का वर्णन है।

महामुद्रा महाबन्धो महावेदयश्च खेचरी
उड्डुयानं मूल बन्धश्च बन्धो जालन्धर विधः
करणी विपरीताख्या, बज्रोली शक्ति चालनं

फेरण्ड संहिता :

वेद शास्त्र पुराणानि सामान्य गणिका मिव
एकैव शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव

4/35/36

न रोगो न मरणं तन्द्रा न निद्रा न क्षुधा न तृषा।
न मूर्च्छा भवेत्तस्य यो मुद्रा वेत्ति खेचरीम्॥
पीड्यते न रोगेण लिप्यते न च कर्मणा
बाध्यते न स कालेन यो मुद्रा वेत्ति खेचरीम्।

3/39/40

सहजावस्था :

मनो यत्र विलीयते पवनस्तत्रलीयते
पवने लीयते यत्र मनस्तत्र विलीयते।
मनः स्थैर्य स्थिरोवायुस्ततो बिन्दुः स्थिरो भवेत्।
विदुस्चैर्यात्त सदा सत्त्वं पिण्डस्थैर्यं प्रजायते॥

हठयोग प्रदीपिका (4/21/22/23/28)

षट् चक्रं षोडशाधारं द्विलक्ष्यं व्योम पंचकम्
स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्धयत्तियोगिनः।
योग में नाद बिन्दु का बहुत महत्त्व है।
सर्व चिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा
नाद एवानु सन्धेयः योग साम्राज्य मिच्छिता।

हठ-93

ओंकार जपः

ॐ नाद-बिन्दु की ध्वनि है।

उ-बिन्दुवाचक, म-नाद तथा अ अद्वैत सत्ता का वाचक है।

अतएव ॐ के रूप से त्रिगुणात्मिक माया का सम्बन्ध टूट जाता है।

ओमित्येक्षरं ब्रह्म व्याहरनमामनुस्मरन्
यः प्रयाति त्यजन देहं संचातिः परमां गतिंः

बौद्ध एवं जैन धर्मों में ॐकार का विशेष महत्त्व रहा है। सन्तों ने कहा है—

आदिशब्द ऊँहे ॐकारा, उठै शब्द धुनि शरंकारा।
खाद्यते न च कालेन बाध्यते न च कर्मणा
साध्यते न स केनापि योगी युत्प समाधिना।
न गन्धं न रसं रूपं न स्पर्श न निःश्वनम्
नात्मनं न परम वेत्ति योगी मुक्त समाधिना।

'योग' ऐसा जीता-जागता प्रतिबिम्ब पूज्य योगी सम्राट देवराहा बाबा में देखने को मिला। प्रस्तुत आलेख भी उन्हीं की क्रियाओं तथा उपदेशों पर आधारित है।

सच्चे योगी का दर्शन प्राप्त होना ही आजकल कठिन-सा हो गया है। पूज्य बाबा जब मंच पर विराजमान होते तो साक्षात् शिव के अंश रूप में प्रतीत हुआ करते थे। उनकी वाणी में सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय एवं विश्व का अलौकिक ज्ञान समाहित था। वस्तुतः देखा जाय तो योग जो साक्षात परमात्मा के सान्निध्य का द्योतक है, लोप-सा होता जा रहा है। लौकिक जगत में जिस 'योगाभ्यास' की चर्चा हम करते हैं, या क्रिया रूप में करते हैं, उससे केवल स्वास्थ्य लाभ हो सकता है, परन्तु आध्यात्मिक लाभ सम्भव नहीं हैं आंशिक रूप से भी यदि कोई इसे प्राप्त कर लेता है, तो वह शिवत्व को प्राप्त हेाता है। पूज्य बाबा के जीवन-दर्शन का अध्ययन करे तो हम देखेंगे कि उन्होंने योग का समन्वय लौकिक एवं पारलौकिक दोनों दृष्टियों को समाहित कर लोक-कल्याण के लिये किया है। जहाँ कहीं भी मानव कल्याण, जीव-जगत के कल्याण की आवश्यकता होती वे उसका प्रयोग करते। वे जानते थे सभी योगी नहीं बन सकते पर योग विद्या दे सकते हैं। नाम नाम का निरन्तर जप, गो सेवा, आचार-विचार तथा व्यवहार की निरन्तरत्व ये सभी योग के अंग हैं। उनका मानना था कि यदि मनसा अपने आचरण से कोई व्यक्ति धर्म का पालन करता है तो वह भी साधक है, आजचरण उसकी साधना है। पूज्य बाबा योग की पराकाष्ठा पर पहुंच चुके थे, इस लिये आज का विज्ञान उन्हें 'भृंगी कीड़े' के सदृश्य भी नहीं प्रतीत होता था।

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्दातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधा साक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुण रहितं सद्गुरुतं नमामि।।

अथर्ववेद में प्रतिबिम्बित मानवाधिकार और उसकी प्रासंगिकता

डॉ. अरुण कुमार त्रिपाठी

प्रत्येक व्यक्ति तथा व्यक्ति समूह को उत्पीड़न एवं यातनाओं से मुक्त जीवनयापन का हक है। मानवाधिकार ऐसे ही सुसभ्य एवं सुसंस्कृत समाज की अवधारणा है। 10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा करके मानव के अधिकारों की सुरक्षा का प्रावधान किया है।[1] इसी के द्वारा मानवाधिकारों को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्रदान की गई है। मानव जाति अपने अधिकारों के लिए लगातार संघर्ष करती रही है, 1215 में मैग्नाकार्टा, 1676 में बंदी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम, 1689 के बिल ऑफ राइट्स, 1776 की अमेरिका की स्वतंत्रता की घोषणा, 1789 की फ्रांसीसी मानवाधिकारों की स्वतंत्रता की घोषणा, 1789 की फ्रांसीसी मानवाधिकारों की घोषणा इत्यादि ने मानवाधिकारों को महत्वपूर्ण स्थान दिया।[2] पाश्चत्य विचारक लॉक ने मानवाधिकारों को प्रकृति प्रदत्त बताया था। दोनों विश्व युद्धों में मानवता को गहरा आघात पहुँचा जिसके परिणामस्वरूप संसार के बड़े राजनीतिज्ञों ने मानव अधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं को सुरक्षित करने के प्रयास आरम्भ किये। मानवाधिकार पर भारतीय परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि भारत में वैदिक काल से ही मानव के अधिकार के प्रति लोगों को जागरुक किया जा रहा है। वेद दुनिया का प्रचीनतम धर्मग्रन्थ माना जाता है। इसमें मानव जाति के लिए सत जीवन-जीने की आचार संहिता जगत् को प्रस्तुत की गयी है। वेदों को ईश वाणी स्वीकार किया गया है, इसीलिए वेदों में दिये गये अधिकार प्रभुप्रदत्त अधिकार है जो अजर और अमर है। सम्पूर्ण वेदों में प्रतिबिम्बित मानवाधिकारों के अध्ययन के विस्तार में ना जाकर सम्प्रति लेख में हम केवल अथर्ववेद में निहित मानवाधिकार का ही अध्ययन करेंगे।

संयुक्त राष्ट्रसंघ ने तीस अधिकारों को मानव अधिकार के रूप में गिनाया है। इसी तरह भारतीय संविधान में भी छह मौलिक अधिकारों सहित अनेक अधिकार दिये गये हैं। उपर्युक्त सभी अधिकार अथर्ववेद में भी प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद में मानव के कल्याण के लिए ईश्वर द्वारा निर्देशित अधिकार प्रदान किये गये हैं।

वेदों की महनीयता इसी बात पर उभरकर संसार भर को आकर्षित करती है कि वह किसी एक जाति, एक समुदाय, एक धर्मानुयायी के सुख की कामना नहीं करती, उसकी प्रभुता पूर्ण वाणी-भाव नहीं है। अर्थात् सभी के बीच समता है। संयुक्त राष्ट्र ने भी इस अधिकार को अपने पहले ही अनुच्छेद में रखा है।[3] इसी तरह भारतीय संविधान में भी समता का अधिकार महत्त्वपूर्ण मानवाधिकार है।[4] समता के अधिकार को अथर्ववेद में भी अत्यधिक महत्व दिया गया है—

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानवस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥[5]

अर्थात् हे मनुष्यों तुम्हारे हृदय एक समान हों, तुम्हारें विचार एक जैसे हों, तुम्हारे संकल्प एक जैसे हो, ताकि तुम संगठित होकर अपने सभी कार्य पूर्ण कर सको। अथर्ववेद का कहना है कि चूँकि सभी को एक ही ईश्वर ने जन्म दिया है। इसलिए ईश्वर प्रदत्त सभी वस्तुओं पर सभी का समान रूप से अधिकार है। इसलिए सभी को एक होकर

इसे विकासशील बनाए रखना चाहिए। अथर्ववेद में व्यक्तियों में समानता रखने के लिए व्यक्तियों को समान विचार को सम्पादित करने वाला ज्ञानदेने के लिए कहा गया है—

तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः।[6]

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता की बात की गयी है। वस्तुतः देखा जाय तो यह अधिकार मानव जाति का सर्वप्रमुख अधिकार है क्योंकि ईश्वर द्वारा दिया गया मानव जन्म को नष्ट करने का अधिकार किसी भी व्यक्ति को प्राप्त नहीं है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी इसे तीसरे मानवाधिकार के रूप में लिया है। अथर्ववेद भी मनुष्य के प्राण की स्वतंत्रता की बात करता है। उसका कहना है यद्यपि कि मनुष्य का जन्म निश्चित रूप से मृत्यु के लिए ही हुआ है, किन्तु इसका अधिकार किसी मनुष्य को नहीं है। इसलिए अथर्ववेद यह आवाहन करता है कि कोई व्यक्ति वृद्धा अवस्था के पूर्ण मृत्यु को न प्राप्त हो-

अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः।
यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे
स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः।।[7]

इतना ही नहीं अथर्ववेद उस मृत्यु का समय भी निर्धारित करता है और वह प्राण तथा अपान को आदेश देता है कि तुम मनुष्य को छोड़ो नहीं वरन् मनुष्य के शरीर में सौ वर्ष तक इस प्रकार से निवास करते रहो जिस प्रकार से गौवें गोशाला में घूमती हुई निवास करती हैं। और इस तरह से बिना किसी बाधा के वृद्धावस्था तक बिना किसी बाधा के सुखपूर्वक जीवनयापन करें।[8] इतना ही अथर्ववेद व्यक्ति के प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार को पराकाष्ठा तक मानता है कि व्यक्ति को रोगादि से भी बचने के लिए विधि बताता है—

व्यवात् ते ज्योतिरभूदप त्वत् तमो अक्रमीत्।
अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि।।[9]

संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकार के चार्टर में प्रत्येक व्यक्ति को करने, जीविका के लिए पेशा चुनने, काम की उचित और अनुचित परिस्थितियाँ प्राप्त करने और बेकारी से सुरक्षित रहने का अधिकार अनुच्छेद तेइस में प्राप्त होता है। भारतीय संविधान में काम का अधिकार तो है किन्तु इसे नीति निर्देशक तत्त्व में रखा गया है किन्तु अथर्ववेद में काम को बलवान तथा शत्रुओं को नाश करने वाला बताया गया है।

सपत्नहनमृषभं घृतेन कामं शिक्षामि हविषाज्येन।
नीचैःसपत्नान् मम पादय त्वमभिष्टुतो महता वीर्येण।।[10]

अथर्ववेद में काम की महत्ता बताते हुए कहा गया है कि काम का बड़ा संरक्षक ज्ञानमय कवच है, वह सब सुखों का देने वाला है। इसको मैं पहनता हूँ, जिससे शत्रु के शस्त्र मेरा वध नहीं करेंगे और सब शत्रु प्राण, पशु और आयु से रहित हो जायेंगे।[11] इस प्रकार से अथर्ववेद में काम की महत्ता बताते हुए काम के अधिकार को व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण बताया है। इससे केवल धन, पशु, आयु की ही प्राप्ति नहीं होती वरन् शत्रुओं का भी नाश हो जाता है। अर्थात् काम करने पर धन आयेगा और धन के रहने पर शत्रु भी मित्र हो जायेंगे।

भारतीय संविधान में संस्कृति तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार को मौलिक अधिकार में रखा गया है। इसी से इसकी महत्ता का पता चलता है। शिक्षा नहीं है तो व्यक्ति बिना नेत्र के मनुष्य की भाँति है। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने भी मानवाधिकार की घोषणा में शिक्षा के अधिकार को अनुच्छेद छब्बीस के अन्तर्गत रखा है।प्रारम्भिक शिक्षा तो विश्व के सभी देश आवश्यक

मानते हैं, अथर्ववेद भी शिक्षा के अधिकार को मानता है तथा कहता है कि जिस प्रकार से एक अच्छा वैद्य संशोधक औषधि से बाहरी और भीतरी रोगों का प्रतीकार करता है, वैसे ही आचार्य विद्या प्रकाश से ब्रह्मचारी के अज्ञान का नाश करता है—

यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम्।
एवा रोगं चास्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्च इत्।।[12]

शिक्षा प्राप्त मनुष्य को नीर-क्षीर, अच्छे-बुरे तथा सत्य-असत्य का विवेक होना आवश्यक है, अन्यथा विद्या का कोई अर्थ नहीं होगा। अथर्ववेद का कहना है कि शिक्षाप्राप्त व्यक्ति को वेद आदि शास्त्रों में प्रतिपादित यज्ञ, दान, धर्म, तप, नियम तथा सत्य के पथ से भयंकर परिस्थितियों में भी कभी विचलित नहीं होना चाहिए।[13]

अथर्ववेद सभी व्यक्ति को निर्भय रहने का अधिकार भी देता है। इसका कहना है—

यथा द्यौश्च पृथिवी च न वि भीती न रिष्यतः। एवा मे प्राण मा बिभेः।[14]

अथर्ववेद कहता है कि जिस प्रकार से दिन-रात, सूर्य-चन्द्र, ब्रह्मज्ञानी तथा क्षत्रिय लोग किसी भी व्यक्ति से डरते नहीं है उसी प्रकार से प्राण तू भी मत डर।[15]

भारतीय संविधान में राष्ट्र के प्रति निष्ठा रखने के कर्तव्य के साथ ही साथ राष्ट्र के नागरिकों को अनेक सुविधाएं जैसे राष्ट्र की वस्तुओं के उपभोग का अधिकार दिया गया है और संयुक्त राष्ट्रसंघ ने भी मानवाधिकार की घोषणा में अनुच्छेद 15 में राष्ट्रियता का अधिकार दिया है। इसी प्रकार से अथर्ववेद भी राष्ट्रियता के अधिकार के साथ ही साथ राष्ट्र से उत्पन्न वस्तुओं के उपभोग का अधिकार देते हुए कहता है कि—

यस्याश्चतस्त्रःप्रदिशःपृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयःसंबभुवुः।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु।।[16]

अर्थात् हमारी जिस भूमि में उद्यमी और शिल्पकला में निपुण, कृषि कार्य करते हैं, जिस भूमि में चार दिशाएँ और चार विदिशाएँ, धान, गेहूँ आदि पैदा करती हैं, जो विभिन्न प्रकार के प्राणियों और वृक्ष वनस्पतियों का पालन-पोषण और संरक्षण करती है, वह मातृभूमि हमें गौर आदि पशु और अन्नादि प्रदान करने वाली हो।

उपर्युक्त मन्त्र वस्तुतः देश के नागरिकों के राष्ट्र के प्रति अधिकार को स्पष्ट करते हैं। इतना ही नहीं अथर्ववेद राष्ट्र के नागरिकों को राष्ट्र से उत्तम, प्रिय तथा कल्याणकारी पदार्थों से सुखसम्पन्न करने तथा ज्ञान, वर्चस् और ऐश्वर्य प्रदान करने का अधिकार देता है।[17]

अथर्ववेद मनुष्य को आय, बल और विद्या प्राप्त करने का अधिकार देता है जो मनुष्य के लिए सर्वोपयोगी है अथर्ववेद में कहा गया है कि जिस प्रकार से जल, खान-पान, खेती-बाड़ी, कला, मन्त्र आदि में उपयोगी, है, उसी प्रकार मनुष्य को आय, बल और विद्या की दृष्टि से परस्पर वृद्धि करनी चाहिए—

आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे।।

अथर्ववेद-1/5/1

अर्थात् व्यक्ति को अपना आय, बल तथा ज्ञान से दूसरे की तथा दूसरे के धन, बल तथा ज्ञान से अपनी वृद्धि करनी चाहिए। इससे व्यक्ति के साथ ही साथ समाज की वृद्धि का सन्देश भी अथर्ववेद देता है।

इस प्रकार से अथर्ववेद में सम्पूर्ण मानवाधिकार प्रतिबिम्बित होता है, चाहे वह संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार का अनुच्छेद हो चाहे किसी भी देश के संविधान या कानून में निहित मानवाधिकार हो, अथर्ववेद में हमें उसका प्रमाण प्राप्त हो जाता है। यदि आज के लोग परम्परा से वेदादि का अध्ययन किये होते तो सम्भवतः इन कानूनों एवं नियमों

की आवश्यकता ही न पड़ती। इसलिए सभी मानव को वेदादि का ज्ञाान, उसे अपने जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यक है। अथर्ववेद में जहाँ एक ओर मनुष्य के लिए समता, स्वतंत्रता, धर्म, काम, शिक्षा, सम्पत्ति एवं शोषण के विरुद्ध अधिकार प्राप्त हैं वहीं दूसरी ओर उन्हें मनवाने के लिए दण्ड का नहीं वरन् ज्ञान का सहारा लिया गया है। इसलिए अथर्ववेद का मार्ग उत्कृष्ट है। अन्त में निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि अथर्ववेद सम्पूर्ण मानवाधिकार का दर्पण है।

डॉ.अरुण कुमार त्रिपाठी
48/18 एचआईजी, योजना-2
झूँसी, प्रयागराज
(तिघरा, नगहरा, बस्ती)
मो0नं0- 9918456889

सन्दर्भ—

1. घोषण में यह घोषित किया गया कि—''मानव परिवार के सभी सदस्यों की अंतनिर्हित गरिमा और समान तथा अभेद्य अधिकार विश्व में स्वतंत्रता, न्याय और शांति के आधार हैं''—भारत का संविधान, द्वारा व्रज किशोर शर्मा, सं. 2005,पृ.62

2. संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा नीना शिरीष, सं. दिल्ली विश्वविद्यालय, सं. 2004, पृ.134
3. वही, पृ. 136
4. भारत का संविधान—दुर्गादास बसु, सं. 1999, पृ.88
5. अथर्ववेद, काण्ड 6, सूक्त 64, मन्त्र 3
6. वही, काण्ड 3, सूक्त 30, मन्त्र 4
7. वही काण्ड-5, सूक्ता 30, मन्त्र 17
8. वही, काण्ड-7, सूक्त 53, मन्त्र 2 और 5
9. वही, काण्ड-8, सूक्त 1,मन्त्र 21
10. वही, काण्ड-9, सूक्त 2, मन्त्र 1
11. यत् ते काम शर्म त्रिवरूथमुद्ध ब्रह्म वर्म विततमनतिव्याध्यं कृतम्।
    तेन सपत्नान् परि वृड्ग्धि ये मम पर्येनान प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु।। वही 9/2/16
12. वही, काण्ड-1, सूक्त-2, मन्त्र-4
13. मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः।
    मान्तः स्थुर्नो अरातय।। वही 13/1/59
14. वही, काण्ड-2, सूक्त-15, मन्त्र-1
15. वही, मन्त्र-2 से 5 तक
16. वही, काण्ड 12, सूक्त-1, मन्त्र-4
17. वही, मन्त्र-7

मानस में निहित लोकोक्तियाँ व कहावतें

डॉ0 शम्भुनाथ त्रिपाठी 'अंशुल'

गोस्वामी तुलसीदास कृत श्रीरामचरित मानस लोकभाषा में प्रणीत एक अत्यन्त लोकप्रिय प्रबन्ध-काव्य है। इसके सप्त-प्रबन्ध मानस के सात सोपानों की भाँति निबद्ध हैं। इन्हीं के अन्तर्गत राम कथा के विविध आयामों को विस्तार प्राप्त हुए हैं। मानसकार को इसकी सहज लोकप्रियता पर दृढ़ विश्वास पहले ही से था कि सज्जन लोग 'रामचरित मानस' से प्रीति रखेंगे और असज्जन इसकी अवश्य ही निन्दा करेंगे। इसी बात को उन्होंने व्यक्त भी किया है—

''छयिहहिं सज्जन मोर ढिठाई।सुनिहहिं बाल वचन मन लाई।।
जौं बालक कहि तोतरि बाता। सुनहिं मुदितमन पितुअरुमाता।।
हैसिहहिं क्रूर कुटिल सुविचारी। जे पर दूषन भूषन धारी।।''

और–

''चैहहिं सुख सुनि सुजन सब, खल कहिहहिं उपहास।।''

भविष्य द्रष्टा भक्त शिरोमणि महाकवि गोस्वामी तुलसीदास का यह अटूट विश्वास कालान्तर में अक्षरसः सत्य प्रतीत हुआ। सज्जन लोग बालक की तोतली बोली-सी ही इसे सुनकर प्रसन्न ही नहीं हुए अपितु उन्होंने इस ग्रन्थ को बहुमूल्य सदुपदेशरत्न-एक सुन्दर मंजूषा समझा और आज भी श्रद्धापूर्वक इस पर आन्तरिक प्रेम व अभिरूचि रखते हैं। परन्तु क्रूर कुटिल इसकी निन्दा करने में नहीं चूकते।

मानस-प्रणयन काल में संस्कृत-भाषा एवं पाण्डित्य का प्रचुर प्रचलन था इसलिए भाषा में लिखे जाने के कारण आशीस्थतत्कालीन पण्डित गण भी इसकी निन्दा में प्रवृत्त थे। इसका पूर्वाभास अथवा भय गोस्वामी जी को था, इसीलिए पहले ही उन्होंने मानस में लिख दिया था—

''भाषा भनित मोरमति थोरी। हैसिवे जोग हँसे नहिं खोरी।''

इस कथन को इस उक्त आशंका से सम्बन्धित करना तो उपयुक्त ही है किन्तु यहाँ गोस्वामी जी की विनम्रता, स्वात्म लघुता बोध एवं कालिदास की परम्परा का अनुगम भी कहा जा सकता है। क्योंकि मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम जैसे महानायक के आदर्श, चरित का वर्णन करना निश्चय ही दुष्कर व श्रमसाध्य कार्य था। अतएव पूर्व के संस्कृत कवियों की तरह अपना दुःसाहस स्वीकार करना गोसाईं जी की सहजता का परिचायक है। जैसे कालिदास ने रघुवंश की रचना करते समय लिखा था—

''मन्दःकवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्य फलेलोभादुद्बाहुरिववामनः।''

ठीक इसी भावना से गोस्वामी जी भी अनुगमन पद्धति में ऐसी स्वीकारोक्ति लिख डाले। यर्थाता महाकवि के मन में पाण्डित्य प्रदर्शन की कोई भावना ही नहीं थी। इन्हें तो ''नानापुराण निगमागम' और 'क्वचिदन्यतोऽपि' को जनभाषा में लिखकर जन-प्रबोध कर उपकार करना अभिप्रेत था। इसलिए संस्कृत के प्रकाण्ड ज्ञाता होते हुए भी तुलसी ने लोकभाषा का ही चयन किया। जिसकी भूरि-भूरि प्रसंशा आनन्द कानन वासी ब्रह्मचारी के इस श्लोक द्वारा अभिव्यज्जित होती है—

''आनन्द कानने ह्यास्मिन् तुलसीजङ्गमस्तरुः।
कविता मन्जरी यस्य रामः भ्रमर भूषिता॥''

इस तथ्य का सहर्ष अनुमोदन करते हुए काशिराज श्रीमान् महाराजा ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह जी ने भी यह दोहा लिखा था—

''तुलसी जंगम तरुलसे, ऑनद कानन खेत।
कविता जाकी मंजरी, राम भ्रमर रस लेत॥''

वस्तुतः पूर्व प्रचलित परम्पराओं से पृथक कोई भी कार्य जब किया जाता है तो तत्काल प्रायः वह हास्यास्पद होता है या निन्दास्पद। किन्तु ज्यों-ज्यों काल व्यतीत होता जाता है त्यो-त्यों ऐसे कार्यों के प्रति आदर व सम्मान भाव की वृद्धि होने लगती है। 'मानस' के साथ भी कुछ ऐसा ही घटित हुआ।

आज श्रीरामचरित मानस' जनमानस में इतना प्रभावी हो गया है कि' न केवल सम्पूर्ण भारत अपितु समग्र विश्व में इसका समादर हो रहा है। अनेक भाषाओं में इसका अनूदन भी हो चुका है। क्या राजा क्या रंग, क्या बाल क्या वृद्ध, क्या युवक क्या युवती सब के सब इसका रूचिपूर्वक अध्ययन करते हैं। कहीं वक्ता व्यास गद्दी लगाये अपने श्रोताओं को रामकथा सुना रहे हैं, कहीं गाँवों में ढोल और झाल बजाकर झूमते हुए इसका गान कर रहे हैं, कहीं दो-चार प्राणी ही किसी वृक्ष के नीचे बैठकर ग्रंथ बॉच रहे हैं, तो कहीं एकान्त में शान्त भाव से गूढ़ तत्वों को कोई विचार कर रहे हैं। कहीं कोई इसके सारगर्भित सदुपदेशों पर मुग्ध है तो कहीं कोई इसके काव्य-लालित्य की प्रसंशा में लीन है। निःसन्देह आज की स्थिति में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं होगा जिसे मानस की दो चार चौपाइयाँ या दोहे कण्ठस्थ न हो। और कहावत, उदाहरण, प्रमाण और व्यवहार में उन्हें व्यवहृतन करता हो। इस रामचरित मानस के सैकड़ों वाक्य 'कहावत' का रूप ले चुके हैं, जिनका संक्षिप्त उल्लेख इस लेख के अन्तर्गत करना समीचीन मानते हैं। सच कहा जाय तो यह ग्रन्थ केवल कविता रस के प्रेम से ही नहीं पढ़ा जाता अपितु यह धर्म का एक अंश-सा बनकर धर्मशास्त्र का एक मानक ग्रन्थ जैसे महनीय हो चुका है। इसमें समाज-नीति, व्यवहार-नीति, राजनीति, आदि अनेक नीतियों का समावेश होने के कारण यह नीतिशास्त्र कहलाने का भी अधिकारी है। गोस्वामी जी ने सभी नीत्यादर्शों को विविध आर्ष ग्रन्थों से लेकर इसमें इस रीति से समाविष्ट किया है कि सहज ही सभी इसका अर्थ समझ सके। यही कारण है यह सबके लिए श्रेय और प्रेम का कारक ग्रन्थ बन गया है। स्वानुकूल सभी को इसमें आनन्द कीप्राप्ति होती है। इसका प्रमुख कारण है कि यत्र-तत्र इस महाकाव्य में लोकोक्तियों एवं कहावतों को अपने ढंग से गोस्वामी जी ने संजोया है। जिसका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार अवलोकनीय है—

प्रायः विपत्तियों में पड़ा व्यक्ति निरुपाय होकर यह कहता हुआ सब कुछ ईश्वराधीन छोड़ देता है—**होइहहिं सोइ जो राम रचि राखा।**'' यह वाक्या कहावत सा प्रचलन में आ चुका है। इसी तरह लोग कह देते हैं—**करइ करावै जानै सोई।**'' वैभवशाली व्यक्ति के साभिमान व्यवहार से क्षुब्ध लोग उसके प्रति प्रायः कहने लगते हैं—**''प्रभुता पाई**

काहि मद नाहीं।'' अपनों से अथवा स्वजनों के व्यवहार से ग्लानि प्राप्त कर स्वयं में अपमान की अनुभूति होने पर कहते देखे जाते हैं—**''सबसे अधिक जाति अपमाना।''**

किसी के प्रति कही गई भविष्य वाणी की सत्यता को लेकर कहा जाता है—**'मृषा न होइ देव ऋषि बानी''**। वैवाहिक अन्वेषण में लीन सम्बन्ध के स्थैर्य पूर्ण संयोग के अभाव में आत्म सन्तोषार्थ कह दिया जाता है—**''वर-कन्या अनेक जग माँही।''**

''बाँझ की जान प्रसव की पीड़ा'' जैसी उक्ति साधारण सा व्यक्ति भी कह ही देता है। निःसन्देह इसमें इस कथन की भाव साम्य रखने वाली भी यह लोकोक्ति है—**''जाके पाँव न फटी बेवाई। सो का जाने पीर पराई।।''**

गोस्वामी जी ने इसी तरह यह लिखा कि **'समरथ को नहिं दोष गोसाईं। रविपावक सुरसरि की नाई।** यहाँ समर्थवान् कुछ भी करें उन्हें कौन प्रतिबन्धित कर सकता है। इसी को किसी कवि ने इस प्रकार भी कहा है—

''को कहि सकत बड़ेन को, करैं बड़ी ही भूल''।

आगे चलकर गोस्वामी जी **'जस दूलह तस बनी बराता''** कहते हुए भगवान शिव के विवाह प्रसंग में बारात संयोजन को व्याख्यायित करते हैं। यह वाक्य पूर्व प्रचलित संस्कृत की इस सूक्ति या लोकोक्ति का भाव साम्य प्रतीत होता है—**''यादृशी शीतला देवी, तादृशो खर वाहन;।''** इसी भाव भूमि पर लोक में भी कहा जाता है—**''जस देवी तस चाहिअ पूजा''**। इस प्रकार वस्तुतः तुलसी के मानस में पग-पग पर इन कहावत पूर्ण वाक्यों का सहज बाहुल्य है। जिनका प्रयोग ग्रामीण अनपढ़ से लेकर सभ्य नागरिक तक वार्ता प्रसंग में नैसर्गिक रूप से करते रहते हैं। **''सर्वं पर वशं दुखम्''** जैसे शास्योक्त नीतिगत तथ्य को गोस्वामी जी इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—**' पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।''**। अवसरवादिता पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने एक प्रसंग में लिखा—''जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई।'' इसके विपरीत समयानुसार कार्य सम्पन्न न होने के दुष्परिणाम के प्रति चिन्ता का संकेत सन्दर्भित करने वाली यह पंक्ति भी एक कहावत का स्वरूप ग्रहण करती है—**''का वरषा जब कृषी सुखाने।''** अर्थात् कृषि सूखने के बाद होने वाली वृष्टि की निरर्थकता सिद्ध करते हुए गोस्वामी जी ने यह सीख देने का प्रयास किया है कि प्रत्येक कार्य समयोचित रूप से आवश्यकतानुसार सम्पन्न करने में ही श्रेयस्-प्रेयस् सिद्धि सम्भव है। तुलसी साहित्य पर सम्यक् रूप से संस्कृत वाङ्मय पूर्ण प्रभावी स्वरूप में आच्छादित प्रतीत होता है। इसीलिए वे दुर्जनों को त्याज्य बताने वाले इन वाक्यों **''दुर्जनः परिहर्तव्यों, विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन्''** अथवा **''वर्जयेत् यादृशं मित्रं विष कुम्भं पयोमुखम्''** का भाषानुवाद इस प्रकार करते हैं और असज्जन के लक्षण का रूपक देते हैं—**''मन मलीन तन सुन्दर कैसे। विष रस भरा कनक घट जैसे।''।**

समाज में व्याप्त अनेक विद्रूपताओं एवं सामाजिक दूषणों के प्रति उदासीनता अथवा अपने दायित्वों में शिथिलता दिखाने वाले लोगों की मौन निन्दा करते हुए या यह कहें कि सांसारिक माया जाल से विरत होने के लिए उनकी यह परामर्श देखिये—**''मूँदिय आँख कतहु कछु नाहीं।''** जो कहावतों के रूप प्रायः आम लोग कहते-सुनते रहते हैं। निःसन्देह यह भी राम चरितमानस की लोकप्रियता एवं प्रसिद्धि का परिचायक है।

सामाजिक व्यवस्था के व्यवहार जगत को सूक्ष्मता का दिग्दर्शन गोस्वामी जी ने इस प्रकार कराया है **''टेढ़ जानि संका सब काहू।''** अर्थात् समाज में दुर्जनों से सभी सर्वत्र सदैव आशंकित रहते हैं। इसीलिए जो गोस्स्वामी जी ने सर्व प्रथम असज्जनों के प्रति नैवेद्यभाव प्रकट किया - **बन्दउँ प्रथम असज्जन चरना।** संस्कृत वाङ्मय का प्रभाव यहाँ भी है। नीतिशास्त्र में निहित यह श्लोक तुलसी की इस भावना को समादृत करता है—

''दुर्जनं प्रथमं वन्दे, सज्जनं तदनन्तरम्।
मुख प्रक्षालनात्पूर्वं गुदा प्रक्षालनं यथा।।''

तुलसीदास कृत सम्पूर्ण मानस लोकभाषा में प्रणीत होने के कारण अनेक कहावतों की सहज प्रस्तुति हो गई है जिन्हें इन बिन्दुओं के साथ दृष्टिगत किया जा सकता है—''**सूखत धान परा जनुपानी।**'' यह चौपाई अशोक वाटिका में उदासमना स्थित सीता जी की मनोदशा के सन्दर्भ में वर्णित है। रामजी द्वारा दूत के रूप में चितान्वेषण हेतु हनुमान के लंका पहुँचने एवं सीता से भेंट वार्ता के सन्दर्भ में यह पंक्ति समाहित है। अर्थात् ''डूबते को तिनके का सहारा'' जैसी लोकोक्ति का यह अनुगमन वाक्य कहा जा सकता है। भाव यह कि शोक सागर में डूबती उतरती सीता को हनुमान जी द्वारा भगवान राम का संदेश उन्हें प्राण रक्षा का साधन रूप मिल गया।

वर्तमान में राजनीतक प्रसंगों के प्रति उपेक्षात्मक भाव से प्रायः लोग गोस्वामी जी द्वारा प्रयुक्त इस पंक्ति को कह जाते हैं—**को उनृप होउ हमहि का हानी**'' वस्तुतः यह प्रसंग मन्थरा द्वारा व्यंजित है जिसकी आगे की अर्द्धाली है—''**चेरि छाड़ि अब होब कि रानी**'' यहाँ तुलसी दास ने मंथरा दासी के सुख से अपनी सफाई या आरोप मुक्ति के लिए ऐसी बात का क्रम चलाया है ताकि लोग उसे निर्दोष ही मानें। ''**हित अनहित पशु पक्षिउ जाना**'', ''इहाँ न लागिहि राउरि माया'' आदि वाक्यों में व्यक्ति की सजागता एवं अपने लाभ-हानि के प्रति जानकारी की सुनिश्चितता की अभिव्यक्ति के साथ समाज के प्रभावी व्यक्तियों के माया-प्रपंच से प्रभावित न हो पाने का संकेत स्पष्ट है।

सांसारिक स्वार्थपरक प्रवृत्ति को गोस्वामी जी ने इन पंक्तियों में व्यवहृत किया है—

''स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती।
सुर नर मुनि सब की यह रीती।।

असमंजस में पड़े हुए व्यक्ति की किंकर्तव्य विमूढ़ता को उन्होंने इस सूक्ति द्वारा व्यक्त किया—''**भइ गति सांप छछूँदर केरी।**'' इसी प्रकार गोस्वामी जी ने इस समाज से प्रत्येक व्यवहार जनित सन्दर्भों का संस्पर्श इन कहावतों व लोकोक्तियों के माध्यम से किया है। जैसे—'**सब सुर काज भरत के हाथा', जिमि दसनन मह जीभ विचारी', जस थोरि धन खल बौराई**'', और **खग जाने खग ही की भाषा**'' आदि सूक्ति परक कहावतों के आश्रय से गोप्यतम रहस्यों का मौन उद्घाटन करने में गोस्वामी जी सहज सिद्ध कवि थे। क्योंकि इन उक्त विशिष्ट पंक्तियों के द्वारा तुलसी ने घटना क्रम को विस्तार से बचाकर संक्षेप में ही कह कर रहस्यों की गोपनीयता को सुरक्षित किया है और कथ्य का पूर्ण सम्प्रेषण भी कर दिया है।

''**जो इच्छा करिहहु मन मांही। हरिप्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।**'' यह चौपाई समग्रतः कहावत का रूप लेने में सफल हुई है। वस्तुतः कहावतें पूर्णसत्य की घोतक हैं और अपने भाव को अथवा विषय प्रतिपादन में कम शब्दों में विस्तार से व्याख्या करने में सहायक सिद्ध होती हैं यह नवल प्रयोग महाकवि गोस्वामी जी के वाकचातुर्य एवं ज्ञान समृद्धि का द्योतन करता हैं अतएव गोस्वामी जी आज भी श्रद्धेय व नमस्य बने हुए हैं।

महामंत्री
रामायण मेला समिति, प्रयाग
'ऋचायतन'
350 बी. नया बैरहना इलाहाबाद

भगवत् अनुग्रह

ज0गु0 रामानुजाचार्य
स्वामी श्रीधराचार्य जी महाराज

पिछले दशक में आलवार को जो भगवदनुभव मिला, वह सत्य ही बेजोड़ था। सर्वशक्त भगवान भी उससे अधिक अनुभव देने में अशक्त हैं। दूसरा कोई भी अनुभव इसके सदृश अथवा इससे अधिक नहीं हो सकता, जिसे यह चेतन कभी माँग सकेगा। अतः इतना ही माँगा जा सकता है कि यही अनुभव, विच्छेद के बिना, नित्य बना रहें। परन्तु यह भगवान की मर्जी की बात है। अस्तु पूर्वाचार्यों का अभिप्राय था कि प्रकृत दसवें दशक में आलवार, पिछले दशक में अपने अनुभूत सीमातीत आनंद को ही स्वानुभव द्वारा प्रकाशित कर रहे हैं। गाय की जुगाली इस विषय का सुंदर दृष्टांत होता है। तथाहि—गाय का यह स्वभाव है कि वह घास पत्ता इत्यादि आहार को मानव की भांति एकदम नहीं निगल लेती; परंतु चरने में समय शीघ्रता के लिए, उस आहार को बराबर चबाए बिना ही तालु अथवा पेट के ऊपर के आमाशय में रख लेती है और बाद में किसी पेड़ की छाया में लेट कर, उस आहार को फिर अपने मुँह में लाकर, उसे धीरे-धीरे, बड़े आराम के साथ चबाती है। यह क्रिया रोमंथ (अथवा जुगाली) कहलाती है। इसी प्रकार आलवार ने पिछले दशक में भगवान् का सुन्दर अनुभव किया तो सही; परंतु उस समय अवकाशाभाव के हेतु वे परिपूर्ण आनंद का आस्वादन नहीं कर सके। वह काम प्रकृत दशक में किया जा रहा है; अर्थात् आप पूर्वानुभव की याद करते हुए अब पूर्ण आनंद पा रहे हैं। यह हुआ पूर्वावार्यों का निर्वाह (माने अर्थ-वर्णन करने का प्रकार)। श्री पराशरभट्टाचार्य स्वामी जी ने इसके साथ और एक सुन्दर अर्थ मिला दिया। तथाहि—आलवार ने पिछले दशक के अनुभव की वारं-वार याद करते हुए अपने मन में विचार किया कि, ''ओह! मुझे यह कैसा अनुभव मिला! अपारकरुणासागर भगवान की कृपा का यह कितना विलक्षण प्रवाह है! क्या स्वयं भगवान् ही कभी इससे अधिक कृपा कर करेंगे? अथवा हम उसका सहन कर सकेंगे? न, न।अस्तु अब मुझे आपकी यह कृपा सहसा कैसे मिली? इसका क्या कारण है?'' परन्तु बहुत सोचने पर भी इसका कोई कारण दीख नहीं पड़ा; अतः आलवार ने यह निश्चय कर लिया कि यह तो भगवान् की निर्हेतुक कृपा का ही काम है। अतः आप इस दशक में (अपने आनंद के साथ) उसी निर्हेतुक कृपा का वर्णन करने लगते हैं। यह निर्वाह श्री कुरुकेशस्वामी जी की षट्सहस्त्री टीका में उपवर्णित नहीं है, किन्तु पहले पहल पेरियवाच्चान्पिल्लै की चौबीस हजार टीका में, और बाद में छत्तीस हजार टीका में पाया जाता है। उक्त चौबीस हजार टीका में यह एक वाक्य विराजमान है कि, ''प्रकृत दशक, निर्हेतुक भगवत्कृपा के विषय में श्री पराशर भट्टर स्वामी जी के अन्यादृश वाग्विलास का प्रकाशक है।'' (अर्थात् भट्टर स्वामी जी इस दशक का प्रवचन करने के समय भगवान् की निर्हेतुक कृपा का बड़ा मनोहर विवरण करते थे)। इनमें से अति संक्षिप्त होने के कारण षट् सहस्त्री व नव सहस्त्री तथा चौबीस हजार-प्रचलित थीं। इनमें से अति संक्षिप्त होने के कारण षट् सहस्त्री व नवसहस्त्री वांचने से रसिकों को पूर्ण तृप्ति नहीं होती। अतः चौबीस हजार टीका का ही उस समय विशेष आदर व प्रचार था। वेंदांतदेशिक स्वामी जी ने भी इसी ग्रंथ का स्वागत व ठीक से अध्ययन किया, इसमें उपदिष्ट रसमय अर्थों का ही अपने ग्रंथों में यत्र-तत्र उल्लेख

किया; और इसी के अनुसार द्रमिडोपनिषत्तात्पर्यरत्नावलि ग्रंथ रचा। इसका सूक्ष्म विवेचन करने वाले सरलतया यह अर्थ समझ सकते हैं। यह अर्थ अन्यत्र (श्री कांची प्र.अ.स्वामी जी के दूसरे ग्रंथों में) विशद रूप से बताया गया है। अस्तु उक्त तात्पर्यत्नावलि में प्रकृतदशक का सारार्थ बताने वाले पद्य में आप लिखते हैं कि ''स्ववितरणमहौदार्यतुष्टोऽभ्यचष्ट'' (आलवार ने भगवत्कृत स्वात्मदान के हेतु उनके महौदार्य से संतुष्ट होकर कहा); और आगे के पद्य में, जिसमें सारे पहले शतक का ही सारार्थ बताया गया है, आप प्रकृत दशक का अर्थ लिखते हैं कि, ''अव्याजोदारभावात्'' (भगवान् के बिना कारण उदार होने से)।

यद्यपि इस दशक में आलवार अपने प्रति भगवान् की प्रदर्शित निर्हेतुक कृपा का ही वर्णन कर रहे हैं। (अर्थात् आप इतना ही कह रहे हैं कि भगवान ने मुझ पर निर्हेतुक कृपा की); दूसरों की बात नहीं की गयी। तथापि समझना चाहिए कि सामान्यतः भगवत्कृता का ही यह स्वभाव बताया गया है। चूँकि यह निर्हेतुक भगवत्कृपा का प्रभाव सत्संप्रदायनिष्ठों का समादृत एक महान व मुख्य अर्थ है, अः श्रीवचनभूषण और आचार्यहृदय में प्रतिपादित रीति से यहां पर इसका संक्षिप्त विवेचन करेंगे। यह विचारणीय अंश है—भगवान जो हमारे जैसे चेतनों पर कृपा करते हैं, वह क्या हमारे सद्गुण, व सचरित्र देख कर करते हैं, (जब कि वह सहेतुक सिद्ध होगी) अथवा क्या हमारे गुणदोषों की परवाह नहीं करते, स्वत एवं करते हैं; (जब कि वह निर्हेतुक होगी)? दूसरों का कहना है कि, ''यदि भगवान निर्हेतुक (माने बिना कारण ही) किसी व्यक्ति पर कृपा करेंगे, तो उन्हें सब पर यह करनी पड़ती है; अर्थात् संसार में रहने वाले सभी मानवों को उनके कृपामात्र होने चाहिए। परंतु हम प्रत्यक्षतः देख रहे हैं कि इस विशाल प्रपंच में कभी किसी एक व्यक्ति पर आपकी कृपा बहती है; दूसरे सभी कृपा के अविषय ही रह जाते हैं। अतएव शास्त्रों में भगवत्कृपा प्राप्त करने के अनेक उपाय बताये गये हैं। यदि वह कृपा बिना कारण ही मिले, तो उसे प्राप्त करने के लिए हमें प्रयत्न करने की आवश्यकता कौन-सी है? अतः उसे सहेतुक कहना ही शास्त्र व युक्ति के अनुगुण है।

अब इसका सारभूत समाधान बतावेंगे। भगवान् की कृपा एक अमूल्य वस्तु है। हमारा स्वभाव तो अपराध ही करते रहना है। ऐसे हमारे पास व श्रेष्ठ वस्तु पाने के योग्य कौन—सा गुण रह सकता है? अथवा कदाचित् ऐसी कोई वस्तु होगी जिसे किसी तरह गुण कहना शक्य हो। शास्त्रज्ञ, ऐसे भी आठ एक गुण बताते हैं। उनका अब विवरण करेंगे।(1) सर्वदा प्रणिहिंसा करने में ही निरत हमने कदाचित् दूसरे अनेकस प्राणियों के साथ अचानक किसी भगवद्भांगवतविरोधी का भी वध किया होगा। यह तो स्पष्ट है कि प्राणिहिंसा करना बड़ा पाप है; किंतु भगवद्भागवत शत्रु का वध करना पुण्य है। परन्तु हमने इसे सुकृत मानकर, अथवा सुकृत का अनुष्ठान करने के संकल्प से यह काम नहीं किया। प्राणिहिंसा करने के लिए ही शस्त्र का प्रयोग करने वाले हमने अकस्मात् दुष्ट का भी संहार कर दिया। (2) हम किसी उसे देखने के लिए हमें भी बारंबार मंदिर में जाना पड़ता है; भगवान् के दर्शन भी करने पड़ते हैं। यह तो बात ठीक है कि मंदिर जाना और भगवान के दर्शन करना सत्कर्म है; परन्तु हमने मंदिर जाना अथवा भगवान के दर्शन करने नहीं चाहे; वेश्यालोलुप होकर इधर उधर भटकने वाले हमें अकस्मात् मंदिर जाने का भी अवसर प्राप्त हुआ। (3) हमारे खेत में कोई गाय सस्य चरती होगी, जिसे मारने के लिए हम हाथ में डंडा लेकर दौड़ते हैं। वह गाय भी हमें देखकर डरती हुई भागती है और पास में विराजमान किसी भगवन्मंदिर की परिक्रमा करती है। गाय के पीछे पीछे दौड़ने वाले हम भी वह परिक्रमा कर लेते हैं। सुकृत मिल गया। (4) संसारी हम अपने पुत्रों व पुत्रियों को नाना देशों में परिणय करते हैं, जिनमें श्रीरंग, श्रीवेंकटाद्रि, श्री कांची, श्रीयादवाद्रि इत्यादि दिव्यदेश भी अंतर्गत होते हैं। पीछे हम कभी कभी अपनी संतान से अथवा संबन्धियों से मिलने के लिए उधर जाते हैं और ऐसी बातें करते हैं कि, ''हम कल श्रीरंग जायंगे; इत्यादि। हमें दिव्यदेशों का नामोच्चारण अथवा उनकी यात्रा करने का बिलकुल विचार नहीं रहता;

तथापि लौकिक वार्तालाप अथवा कामकाजों के बीच में यह भी सुकृत करना पड़ता है। (5) अथवा पैसावान होने के कारण हम अपनी सेवा करने के लिए अनेक नौकर चाकर रखते हैं। उनमें किसी का नाम नारायण, दूसरे का गोविंद, और तीसरे का केशव होगा। उनको बुलाने की भावना से हम वारं-वार पुकारते हैं कि, 'हे केशव!' 'हे नारायण!' 'हे गोविंद!' इत्यादि। भगवन्नामोच्चरण करने की हमारी चिंता तक नहीं रही। (6) अथवा कितने ही भगवद्भक्त जन दिव्यदेशों की यात्रा करते हुए किसी निर्जन वन से निकल रहे हैं। उधर दो चार चोर मिलकर उन भक्तों को लूटने की राह देख रहे हैं। उतने में शस्त्रधारी एक राजकर्मचारी उसी रास्ते निकलता है जिसे देखकर चोर समझते हैं कि यह तो इन यात्रियों की सुरक्षा करने के लिए आया है; और वहां से भाग जाते हैं; अर्थात् उसके निमित्त भक्तों की रक्षा हुई। उन भक्तों तथा कर्मचारी को इस रहस्य का पता भी न अर्थात् उसके निमित्त भक्तों की रक्षा हुई। उन भक्तों तथा कर्मचारी को इस रहस्य का पता भी न लगा। वे अपने रास्ते चले गये। (7) कोई किसान अपने खेत में प्याज, लहसुन इत्यादि उपजाना चाहता हुआ, उधर पानी का अभाव होने से, दूरस्थित कुँए से निकलवा कर नहरों द्वारा प्रकृत खेत तक पानी बहाता है। दिव्यदेशयात्रा करते दूर से चलकर आने वाले थके हुए व प्यासे कतिपय भक्त जन, इधर उधर पानी ढूंढ़ते हुए यह नहर देखकर उसमें अपने हाथ पग मुँह धोकर, पानी पीकर प्रसन्न होते हैं। प्याज रोपने वाले किसान को इस बात का पता भी न लगा कि ये भक्तजन मेरे पानी का उपयोग कर रहे हैं। यदि उसे इसका पता लगता, तो शायद वह उन्हें अपनी पानी छूने तक नहीं देता। तथापि अकस्मात् उससे भक्तों की यह सेवा बन गयी। (8) कोई धनिक जुआ खेलना, हवा खाना इत्यादि काम के लिए अपने घर के बाहर विशाल व सुंदर ओरी बनवाकर, दिन भर और आधी रात तक अपने मित्रों के साथ इधर उधर ही रहता है; और बाद में घर के अन्दर जाकर आराम करता है। उसके बाद कितने ही भक्त जन इधर उधर दिव्यदेशों की यात्रा करते हुए वह गाँव पहुँचकर उस ओरी में विश्राम कर लेते हैं। गृहस्वामी ने इनके लिए वह ओरी नहीं बनवायी; उसे इस बात का पता भी नहीं चला कि मेरी ओरी में यात्री लोग आराम करते हैं। परन्तु अचानक ही उन्हें वारंवार उक्त प्रकार उनकी सुविधा करने का अवकाश मिला। ऐसे और भी अनेक दृष्टांत दिये जा सकते हैं, जहां कर्ता की इच्छा अथवा ज्ञान के बिना भी उससे सत्कर्म अनुष्ठित किये जाते हैं। परन्तु स्वभावतः दयामय, और अतएव पापी चेतनों का अंगीकार करने की राह देखते रहने वाले भगवान, उनके उक्त कार्यों को ही, (जिनमें कितने ही स्पष्ट रूप से पाप हैं;) पुण्य करके नाम देकर, उन पर यों कहते हुए कृपा करते हैं कि ''तुमने मेरे क्षेत्रों के अथवा मेरे नामों का संकीर्तन किया, मेरे भक्तों की सेवा अथवा रक्षा की'' इत्यादि। इस प्रकार हमारे एक जन्म में नहीं, किन्तु अनेक जन्मपरंपराओं में यादृच्छिक (अकस्मात् होने वाले), प्रासंगिक (दूसरे काम करने के प्रसंग में होने वाले), आनुषंगिक (दूसरे काम के साथ किये जाने वाले) इत्यादि पुण्यों को हमारे सिर पर लादकर, उनके निमित्त भगवान् हमारा उद्धार कर देते हैं। इतने मात्र से उनकी कृपा को सहेतुक बतलाना कैसे उचित होगा?

इस पर लोग फिर पूछ उठेंगे कि, ''यह तो पापियों की बात हुई; परंतु लोक में ऐसे पुण्यवान भी बहुत होते हैं जो भगवान की कृपा पाने के लिए नानाविध सत्कर्म करते हैं। उनके बारे में कृपा सहेतुक ही ठहरेगी।'' यह भी बात ठीक नहीं है। यद्यपि हम इस बात का इनकार नहीं करेंगे कि हमारे जैसा पापी भी कदाचित् कोई सत्कर्म करता होगा; और विशेष पुण्यवान जन भी इस संसार में कोई कोई रहता है। तथापि हमारे अनंत पापों के सामने यह पुण्य कौनसी गिनती में आवेगा? श्री यामुनाचार्यस्वामी जी स्तोत्ररत्न में कहते हैं कि, ''न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके सहस्त्रशो यन्न मय व्यधायि'' (अर्त्थात् इस संसार में अथवा धर्मशास्त्रग्रंथों में) ऐसा कोई भी पाप बाकी नहीं रह गया जिसे मैंने हजार वार नहीं किया हो।) श्री कूरेश स्वामी जी कहते हैं कि, ''यद्ब्रह्मकल्पनियुतानुभवेऽप्यनाश्यं तत् किल्बिषं सृजति जन्तुरिह क्षणार्धे।'' (अर्थात् पलभर में मानव इतना पाप करता है, जिसका फल अनेक कल्पों तक अनुभव करने पर भी समाप्त

नहीं होगा।) जब ज्ञानियों के अग्रेसर इन आचार्यों का यह उद्गार ठहरा, तब हमारे जैसे अज्ञों के बारे में कहना ही क्या? सारभूत वार्ता यह है कि भगवान् की कृपा एक ऐसी अनमोल वस्तु है जिसके सदृश कोई भी पुण्य हमसे नहीं किया जा सकता। अथवा मान ही लीजिए कि ऐसा कोई भक्त है जिसने अपने जन्मभर एक भी पाप नहीं किया, किन्तु निरंतन भगवद्भजन ही किया। तथापि उसके पिछले असंख्य जन्मों में किये हुए पापों के सामने इस एक जन्म का गिनती में नहीं आ सकेगा। भगवान की कृपा तो सबसे बड़ी वस्तु है। ऐसी अमूल्य वस्तु को अपने अत्यल्प पुष्प के साथ तोलकर, उसका फल बताना, उस कृपा की अवहेलना है। अतः उसे निर्हेतुक बताना ही युक्ति युक्त है।

इन पर भी लोग यह प्रश्न करेंगे कि, ''यह तो स्वीकार्य हैं कि हमारे पास भगवत्कृता के सदृश कोई पुण्य नहीं है। इतने मात्र से उसे एकदम निर्हेतुक कह डालना कैसे उचित होगा?'' यह आक्षेप बिलकुल निस्सार है। उपाय उसे कहते हैं जो फल के सदृश होगा। जो फल के अनुरूप न हो उसे उपाय कहना लोक व शास्त्र-व्यवहार के विरुद्ध है। कोई गरीब ब्राह्मण किसी राजा के पास जाकर, एक नींबू की भेंट कर, स्तुति कर, यदि उसे विशाल जागीर पा लें, तब कौन-सा विवेकी कह डालेगा कि पंडित जी ने नींबू देकर प्रशंसा तो राजा के औदार्य की होगी, न कि नींबू की। यदि कोई ऐसा आग्रह कर बैठें, कि हम नींबू को जागीर का उपाय ही मानेंगे, तो बेशक मान लीजिए; आपको कौन रोकेगा? कोई नहीं-इत्यलम्।।

बैकुण्ठ धाम आश्रम, प्रयाग

संत संग अपवर्ग कर,
कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद,
श्रुति पुरान सद्ग्रंथ।।

राम सिंधु घन सज्जन धीरा,
चन्दन तरु हरि संत समीरा।
मोरे मन प्रभु अस विस्वासा,
राम ते अधिक राम कर दासा।।

श्री शठकोप मुनि

रमेश प्रसाद शुक्ल

॥श्रीमते रामानुजाय नमः॥

श्रीमाधवाङ्घ्रि जलजद्वयनित्यसेवा
प्रेमाविलाशयपरांकुश पादभक्तम्।
कामादि दोषहरमात्मपदाश्रितानां
रामानुजं यतिपतिं प्रणमामि मूर्ध्ना॥

-यतिराजविंशति,1

''भगवान के कमलरूपी चरणों की नित्य सेवा में प्रेम से जो व्याकूलित हैं ऐसे श्री शठकोप मुनि के चरणों के भक्त अपने चरणों का आश्रय लेने वालों के काम आदि दोषों को नष्ट करने वाले यतिराज श्रीरामानुज मुनि को मैं सिर से प्रणाम करता हूँ।''

टिप्पणी—श्रीशठकोप मुनि कैसे थे? इस प्रश्न का उत्तर श्लोक के पूर्वार्ध में मिलता है—'परांकुशपादभक्तम्। भगवान के चरणकमलों को ही वे अपना परम प्राप्तव्य समझते थे। उनमें उनकी सतत प्रेमव्याकुलता थी। कर्मजनित व्याकुलता हेय होती है। चरणों की उपादेयता का संकेत यहाँ पर हैं। श्रीवचनभूषण और उसकी व्याख्या में बताये गये सिद्धोपाय का यहाँ पर स्मरण किया जा सकता है।

इस श्लोक में 'परांकुश' नाम से श्रीशठकोप मुनि का उल्लेख किया गया है। 'परांकुश' शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार की होती है। प्रथम—पर अर्थात् दूसरे लोगों के अंकुश। द्वितीय—पर अर्थात् परमतत्त्व के अंकुश। दूसरे लोगों से तात्पर्य उन लोगों का है जो परमात्मा परमतत्व को निर्गुण, निराकार एवं विभूतिहीन समझते हैं। श्रीशठकोप जी अपनी दिव्य सूक्तियों के द्वारा उन पर अंकुश के रूप में स्थित हैं और उनकी प्रतिगामिता को रोकते हैं। परात्पर भगवान् के अंकुश होने का तात्पर्य यह है कि उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् स्वयं उनके वशीभूत हैं। यह श्रीशठकोप मुनि ने सहस्त्रगीति में स्वयं स्वीकार किया है।

'कामादि दोषहर'—यहाँ 'आदि' से क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, अज्ञान, असूया अभिप्रेत है। 'कामादि हरम्' न कह कर 'कामादि दोष हरं' कहने का तात्पर्य यह है कि नियमित कामना दोष नहीं। नियमानुकूल विहित कामना का प्रवेश गुणों की कोटि में होता है। भगवान् के सम्बन्ध में कामना, भगवान् एवं भागवतों के विरोधी के प्रति क्रोध, मात्सर्य आदि गुण हैं, दोष नहीं। काम आदि दोषों के निवारण का सामर्थ्य होने के कारण 'दोष हरं' कहा गया है। नतमस्तक होकर प्रणाम करने की बात 'मूर्ध्ना प्रणमामि' से व्यक्त होती है। मस्तक झुकाने के प्रयोजन आलवार—सूक्तियों में वर्णित हैं।

364,आवासविकास कालोनी,-2, झूँसी, इलाहाबाद।

तत्किं कर्मणि घोरे मां

भगवती चरण

गीता सदैव से ही न सिर्फ भारतीयों के लिए बल्कि संपूर्ण मानवजाति के लिए एक अखण्डज्ञानप्रदायिनी पथप्रदर्शिका शिक्षिका के रूप में विद्यमान रही है। मनुष्य के सामने उचित या अनुचित का प्रश्न हो, कर्तव्य या अकर्तव्य का प्रश्न हो, सन्मार्ग या कुमार्ग का प्रश्न हो, सेव्य या असेव्य का प्रश्न हो—जीवन की किसी भी दुविधा में गीता यथार्थ का ज्ञान प्रदान कर मानव का दिशा निर्देश करती रही है। और, इसी कारण गीता दुनिया के सभी महाद्वीपों तक पहुँच चुकी है और प्रायशः दुनिया की सभी भाषाओं में इसका अनुवाद भी किया जा चुका है।

गीता ने सर्वप्रथम जिसके संदेह का निवारण किया था और जिसे कर्म के पथ पर अग्रसर किया था—वे थे अर्जुन। अर्जुन देवराज इंद्र के अंशज पुत्र थे। धनुर्विद्या में उनका कोई मुकाबला नहीं था। वे धर्म और अधर्म को जानने वाले स्नातक थे। महाभारत युद्ध के नायक वही थे। किन्तु युद्ध की शुरुआत में वे विचलित हो गये थे। उनके सामने, उनके विरुद्ध जो सेना खड़ी थी उसमें उनके पितामह भीष्म, गुरु द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और उनके कुल के न जाने कितने ही बुजुर्ग खड़े थे। उनके अपने भाई भी उस सेना में थे। अर्जुन को उन सबके प्राणों का मोह हो गया था। अर्जुन को अपने यश का भी मोह हो गया था। उन्हें लग रहा था कि संसार के लोग तो यही समझेंगे कि अर्जुन ने राज्य की प्राप्ति के लिए अपने गुरुजनों और परिजनों का वध कर दिया। इस कारण अर्जुन इस दुविधा में थे कि युद्ध करें या ना करें। उनकी इस दुविधा का निवारण करने के लिए कृष्ण ने उनको जो उपदेश दिए थे वही आज गीता के नाम से जगत् प्रसिद्ध है।

गीता में भगवान ने स्पष्ट शब्दों में इस युद्ध को धर्म युद्ध की संज्ञा दी। उन्होंने अर्जुन को अपने विराट स्वरूप के दर्शन देकर समझाया कि युद्ध में जिनकी भी मृत्यु होगी, जो कुछ भी होगा वह सब मेरी (कृष्ण की) इच्छा से पहले से ही होना तय है। अर्थात, अर्जुन का यह सोंचना कि ये योद्धा उनके हाथों मारे जाएंगे, उनका अहंकार है—मिथ्या है। भगवान श्री कृष्ण ने उन्हें समझाते हुए कहा कि मनुष्य के मरणशील शरीर के लिए ज्ञानी जन शोक नहीं करते। इस संसार में जितने भी लोग थे, हैं और होंगे—उन सबकी आत्मा अमर है। अतः किसी के मारे जाने का सवाल ही नहीं उठता। जिसे मृत्यु समझा जाता है वह तो सिर्फ शरीर से आत्मा का अलगाव है। और, इसका समय पूर्व निश्चित है। इस बात को और स्पष्ट करते हुए कृष्ण ने कहा कि यह सारा दृश्य जगत असत अर्थात नाशशील है। हमारे इंद्रिय इनका अनुभव करते हैं। इंद्रिय स्वभाव से ही भौतिक विषयों के पीछे भागने वाले होते हैं। किंतु ज्ञानी पुरुष वही है जो भौतिक विषयों को छोड़कर उस तत्व का चिंतन करता है जो सत है—जिससे यह सारा संसार व्याप्त है और वह है आत्म तत्व।

आत्मा को समझाते हुए भगवान बोले कि यह आत्मा अदृश्य है, अविनाशी है, अजर है, अमर है। इसे न कोई मार सकता है, न ही यह किसी को मारता है। यह आत्मा ही प्राणी का वास्तविक स्वरूप है। ऊपर से दिखाई देने

वाला शरीर तो नश्वर है। जो पुरुष सदैव आत्म तत्व में ही स्थित रहता है वही स्थितप्रज्ञ कहलाता है। इस प्रकार अर्जुन के सवाल का जवाब मिल गया। उनके द्वारा किसी के मारे जाने का प्रश्न ही नहीं था। उन्हें ज्ञात हो चुका था कि अविनश्वर आत्मा की ही सत्ता वास्तविक है।

लेकिन, अभी भी अर्जुन का संदेह दूर नहीं हुआ था। अर्जुन के चेहरे पर चिंता की लकीरें वैसी ही विद्यमान थीं। अब जिस प्रश्न को लेकर वे भगवान के सामने हाथ जोड़े खड़े थे, वह था—''तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव''? अर्थात, हे केशव! यदि सत्ता केवल आत्मा की ही है, तो मुझे मुक्ति के लिए ज्ञान का मार्ग क्यों नहीं सुझाते, कर्म के मार्ग पर क्यों नियोजित कर रहे हो? श्री कृष्ण ने गीता में इस प्रश्न का बड़ा ही स्पष्ट उत्तर दिया है।

श्री कृष्ण ने अत्यंत सरल भाषा में अर्जुन को बतला दिया कि कर्म करते रहना, और निरंतर कर्म करते रहना ही मनुष्य का स्वभाव है। मनुष्य के लिए यह सम्भव ही नहीं कि वह कर्म किए बगैर रहे। सारा मानव समुदाय प्रकृति जनित गुणों के अधीन है। ये गुण उसे सदा कर्म में रत रखते हैं। इसलिए कर्म को शुरु किए बिना उसके बंधन से मुक्त होना सम्भव नहीं है। जो लोग यह समझते हैं कि इंद्रियाँ उन्हें कर्म करने को बाध्य करती हैं वे वस्तुतः अज्ञानी हैं। ऐसे लोग मानसिक जबर्दस्ती के जरिए इंद्रियों को वश में करना चाहते हैं। किंतु यह प्रयास सफल नहीं हो पाता। कर्म विमुख होकर इंद्रियजय नहीं किया जा सकता। बल्कि इंद्रियों को वश में रखते हुए भी कर्म करते रहना ही कर्म योग कहलाता है और यही मुक्ति का साधन है। इसके लिए यह अनिवार्य है कि कर्म के फलों में कोई आसक्ति ना हो। कर्म का आचरण केवल धर्म के पालन के लिए किया जाए। इस प्रकार के कर्म से मनुष्य का निर्वाह भी होता है और धर्म का आचरण भी होता है। वास्तविक ज्ञानी वह है जो पाप और पुण्य दोनों को ही इसी संसार में त्याग देता है और कर्मयोग को अपना लेता है।

इस सन्दर्भ में कृष्ण ने जिस बात पर सबसे ज्यादा बल दिया है वह है—आसक्ति का त्याग। मनुष्य को कर्म का त्याग नहीं करना है, बल्कि आसक्ति का त्याग करना है। जो व्यक्ति कर्म के फलों की चिंता में लगा रहता है वह भौतिक जगत में ही फंसा रह जाता है। वह इंद्रियों के बहकावे में उलझता चला जाता है। वह विषयों में आसक्त हो जाता है। मन, बुद्धि और इंद्रियाँ—ये ही काम के वास स्थान हैं अर्थात आसक्ति के जन्म स्थान हैं। आवश्यकता इन्हें वशीभूत रखने की होती है। जब व्यक्ति इन्हें अपने वश में रखने की जगह स्वयं इनके वश में चला जाता है तो परिणाम यह होता है कि वह फलों की लालसा में कर्म करने लगता है और अपकर्म तथा कर्म में भेद भूल जाता है। अतः यह अत्यंत अनिवार्य है कि कर्म के फलों के बारे में लालसा ना रखी जाए।

इसलिए भगवान ने अर्जुन को मार्ग दिखलाते हुए यह कहा कि :-

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि॥

(गीता, अध्याय–दो, श्लोक संख्या-33)

अर्थात, हे, अर्जुन यदि तू इस धर्मयुक्त युद्ध को नहीं करेगा तो स्वधर्म और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगा।

इस प्रकार, अर्जुन के संदेह का तो नाश हुआ ही, बल्कि इस उपदेश से आने वाली पीढ़ियाँ भी युगों युगों तक लाभान्वित होती रही है और होती रहेगी।

भगवती चरण (नयी दिल्ली)